जिस क्षण शिशु अपनी माता के गर्भ से निकल कर पृथ्वी माता की गोद में आता है, उसे एक नवीन वातावरण की अनुभूति होती है। कहाँ वह संकुचित अंधकारमय कोना और कहाँ यह प्रशस्त प्रकाशपूर्ण संसार! समय बीतता है, आयु बढ़ती है और साथ ही ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है। वह अपने आस-पास की वस्तुओं की ओर दृष्टिपात करता है और उनसे मूक परिचय कर लेता है। जिज्ञासा उसका जन्मजात गुण है, अतः जैसे ही वह संकेतों तथा 'गूँ-गाँ' का सहारा पकड़ता है, वह विभिन्न वस्तुओं के लिए मचलने लगता है। कभी वह रंगीन खिलौनों या चित्रों की ओर लपकता है, तो कभी चंदा मामा के लिए एड़ियाँ रगड़ता है। सोचिये तो सही कि उसके वातावरण के ज्ञान में कैसी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती है। भौतिक आधार तथा कृत्रिम व्यापार सब उसके ज्ञान-राशि के सिक्के बन जाते हैं जिन्हें वह अपनी इच्छानुसार ही ग्रहण करता है। इस मनोवृत्ति का विकास कोई अर्वाचीन विज्ञान की देन नहीं, यह मूल वृत्ति तो कदाचित मनु और श्रद्धा की प्रथम सन्तान की भी बपौती रही होगी। आदि मनुष्य ने प्रकृति देवी की पूजा करके उनके असीम आशीर्वाद में सुख पाया होगा। शनैः-शनैः सूर्य्य, अग्नि, वरुण आदि उसके इष्ट बने होंगे। उसने ज्ञान के प्रकाश पुंज में भौतिक वातावरण के बिखरते सौन्दर्य को देखा, मुग्ध हुआ, उसके पूर्ण-परिचय की लालसा बढ़ी। घर, खेत, चाँद, सितारे उसके ज्ञान के विषय बन गये। संक्षेप में मनुष्य भूगोल के हिंडोले में झूला, उसी ने उसका लालन-पालन किया और वहीं उसकी ज्ञान-राशि बन गई। अतः जब वह भूगोल को सगर्व मातृ-विज्ञान (Mother Science) कहता है तो वह सतयुगी सपूत है।

"भूगोल" शब्द का अर्थ है "गोल पृथ्वी"। इससे केवल पृथ्वी के एक विशेष गुण का ही ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु अंग्रेजी के "Geography" शब्द से कहीं अधिक महत्वपूर्ण तत्व हाथ लगता है। इसकी संधि-विग्रह इस प्रकार की जाती है। (पृथ्वी) Geo-graphy (वर्णन करना) अर्थात् "पृथ्वी का वर्णन"। अतः इसकी मोटी परिभाषा हुई कि भूगोल वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत पृथ्वी का वर्णन किया जाता है। भूगोलवेत्ताओं के अनुसार "पृथ्वी" का अर्थ केवल "पृथ्वी के धरा-

ल" तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसके अन्तर्गत पृथ्वी के ऊपर की एक पतली ायु-पेटी तथा पृथ्वी के नीचे का एक पतला चट्टान पर्त भी आ जाता है। ब्रुंश Brunhes) ने लिखा है, "It is on the surface of the globe and in its ower portions of the atmosphere that all the phenomena of plant, nimal and human life are concentrated..........There the sun oncentrates its energy; there the atmospheric agents are consta- tly at work; there, finally, life in all its diverse forms, develops nd multiplies indefatigably."

यद्यपि प्राचीन यूनान में भूगोल नाम का कोई अलग से विषय न था, वह न-राशि का एक विशिष्ट अंग था। इरैटोस्थेनीज़ (Eratosthenes) ने अपने ल में पृथ्वी की माप की और इस प्रकार वह भूगोल का प्रथम अग्रदूत बना। स्ट्रैबो Strabo) ने सर्वप्रथम ७ ई० पू० में अपनी पुस्तक 'Geography' की रचना की ोर भूगोल को एक विज्ञान बनाया। तत्पश्चात् क्लाडियस टाल्मी (Claudius tolemy) ने संसार का प्रथम मानचित्र खींचा और भूगोल की अपनी परिभाषा भी खी।[१] उन दिनों का भौगोलिक ज्ञान जनश्रुति, कल्पना एवं देशाटन पर अवलम्बित । अतः यह अत्यन्त सीमित तथा अक्रमबद्ध था। परन्तु हम इन महापुरुषों के प्रति त अभारी हैं जिन्होंने भूगोल के पौधे को लगाया और शैशव काल में उसे अपने त से सींचा। यही छोटा सा पौधा १६ वीं शताब्दी में एक पेड़ के रूप में दृष्टि- चर हुआ।

आज भूगोल अपनी तरुणावस्था में है। पर दुर्भाग्य का विषय है कि आज हमारे देश में बहुत से लोग इसे सम्मानित स्थान देने में संकोच कर रहे हैं। सर कार कुछ विमाता का सा व्यवहार कर रही है। आज भी लोग इसे सामान्य ज्ञान General Knowledge) का विषय समझते हैं जिसके द्वारा उन्हें पहाड़ों, नदियों गरों आदि के नामों का ज्ञान होता है। फिर भला उच्च शिक्षा तथा पब्लिक सर्वि मीशन के हाथों उसे क्यों न सम्मान प्राप्त हो। उनके हित में तथा देश के हित इ श्रेयस्कर होगा कि वे अविलम्ब भूगोल के प्रकाशपुंज में अपने अज्ञान के अंधका दूर कर लें। उन्हें ज्ञात होगा ज़ाहिर कि भूगोल का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पहाड़

[१]Ptolemy—"Geography is a sublime science which sees in th eavens the reflection of the earth."

नदियों तथा नगरों आदि के नामों की सूची का नाम भूगोल नहीं है। भूगोल उत्कृष्ट विज्ञान, सूक्ष्म कला तथा गंभीर दर्शन तीनों ही है। यह अन्यान्य विज्ञानों की धात्री थी और आज उनके उपयुक्त सूक्ष्म ज्ञान की अनुराशि है। यह वह असीम सागर है जिसे विभिन्न विज्ञानों की नदियाँ अपना प्रतिदान देती हैं। यही कारण है कि भूगोल भौतिक विज्ञानों तथा सामाजिक विज्ञानों के मध्य में केन्द्रस्थ है।

आधुनिक भूगोल के पूर्व भूगोल का अध्ययन केवल प्राकृतिक दशाओं तथा मानव जीवन पर उनके प्रभावों तक ही सीमित था। क्या और कहाँ? ही उस अध्ययन के सूत्र थे। परन्तु आधुनिक भूगोल ने एक और महत्वपूर्ण सूत्र क्यों अपनाया है और मनुष्य तथा वातावरण के पारस्परिक सम्बन्ध को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है? आज वर्णन नहीं अपितु व्याख्या उसका आधार है। आधुनिक भूगोल अथवा वैज्ञानिक भूगोल के सम्बन्ध में ब्रूश (Brunhes) ने लिखा है[1], It is no longer an inventory, it is a history. It is no longer an enumeration, it is a system. It has the double purpose of observing, classifying and explaining the direct effects of acting forces and complex effects of these forces acting together."

भूगोल-वह क्रमबद्ध विज्ञान है जिसका अध्ययन-क्षेत्र पृथ्वी तथा मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध है। हमारा अध्ययन उन्हीं तथ्यों तक सीमित है जिनका मनुष्य से सम्बन्ध है, जिन्होंने उसे प्राचीन काल से प्रभावित किया है, जो आज भी प्रभावित कर रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे। साथ ही इसके अन्तर्गत वे तथ्य भी आते हैं जिन्हें मनुष्य तथा पृथ्वी के पारस्परिक सम्बन्ध का परिणाम कहा जा सकता है, जैसे उद्योग-धन्धे, आवागमन के साधन, ग्राम तथा नगर आदि। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "Just as Economics is centred about price, Geology about rocks, Botany about plants, Ethnology about race, History about time—so the pivotal point of Geography is place. Where and why are among the most persuasive questions to be answered while studying the real geography."

भूगोल एक प्रगतिशील विज्ञान है। मनुष्य परिवर्तनशील है, पृथ्वी परिवर्तनशील है, अतः दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध परिवर्तनशील है। जो आज भविष्य है

[1] Jean Brunhes : *Human Geography*.

कल वही वर्तमान, परसों भूत बन जायगा। यही प्रकृति का नियम है। फिर भला भूगोल जिस का आधार परिवर्तन है, स्थायी किस रूप में कही जा सकती है। अतः मानव-संस्थाओं का अध्ययन प्रगतिवाद के अन्तर्गत ही अपना समुचित स्थान प्राप्त कर सकता है। प्रगतिशील मनुष्य जो निशिदिन इन्कलाब के नारे लगाता है और जिसकी आस्था परिवर्तन में है किसी चहारदीवारी के अन्दर नहीं बन्द किया जा सकता। वह तेजी के साथ बदल रहा है। हाँ, कभी प्रकृति भी आकस्मिक परिवर्तन देखती है। ज्वालामुखी के उद्गारों से लावा पृथ्वी के धरातल पर पट जाता है; भूकम्पों से पृथ्वी काँप उठती है और कतिपय धरातल छिन्न-विच्छिन्न हो जाता है; टाईफून (Typhoon) तथा टार्नेडो (Tornado) द्वारा सागर का क्रोध फूट पड़ता है, और बाढ़ सैकड़ों मील भूमि को ग्रसित कर लेती है।

"Man is not merely a resident of this earth. He is a builder and a Geomorphic agent, an earth changer."[१] वह निशि-दिन अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का प्रयोग भौतिक आपत्तियों को दूर करने तथा प्राकृतिक साधनों से समुचित लाभ उठाने के लिए करता है। वह केवल अपने को वातावरण के अनुसार ढालता ही नहीं अपितु वातावरण को भी अपने ढंग में ढालने का अथक् प्रयास करता है। जब मनुष्य किसी बन को साफ कर देता है और उसे खेतिहर भूमि में परिणत कर देता है, किसी दलदल को सुखा कर उसे एक बड़े फार्म (Farm) का रूप दे देता है, कोई खान खोदता है, किसी नगर का निर्माण करता है, कोई नहर निकालता है, अथवा किसी नदी को बाँध बना कर नियन्त्रित कर लेता है तो मनुष्य का अमुक कृत्य स्वयं वातावरण का अंग बन जाता है और उसे अपने आर्थिक तथा सामाजिक जीवन को तदनुसार ढालना पड़ता है। इस प्रकार भौतिक वातावरण के साथ-साथ सांस्कृतिक वातावरण विकसित होता है; परन्तु सांस्कृतिक वातावरण अधिक परिवर्तनशील होता है।

उपरोक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिन बातों का अध्ययन भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है उन्हें दो विभागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) भौतिक अथवा प्राकृतिक (Physical)

(ब) सांस्कृतिक अथवा मानवीय (Cultural)

पृथ्वी के धरातल पर बहुत सी ऐसी वस्तुएँ मिलती हैं जिनकी उत्पत्ति तथा

---

[१] Russell Smith : *Industrial and Commercial Geography.*

उसकी धुरी के झुकाव (६६½°) तथा उसकी गतियों (दैनिक तथा वार्षिक) के फल-स्वरूप तापक्रम के वितरण में असमानता होती है और इस तापक्रम के असमान वितरण के कारण हवाएँ चलती हैं। तापक्रम तथा हवा के दबाव के फलस्वरूप अन्यान्य भौतिक दशाओं जैसे वर्षा, बर्फ, टार्नैडो, टाईफून तथा तूफान का जन्म होता है। ग्लैशियर तथा नदियाँ भी इन्हीं के आभारी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वायुमण्डल पर सूर्य का महत्वपूर्ण नियन्त्रण है जिसके फलस्वरूप पृथ्वी के धरातलीय संगठन में भी परिवर्तन होते रहते हैं। यही नहीं अपितु सभी जीवधारियों, पशु, पौधे एवं मनुष्य का जीवनाधार सूर्य ही है। यही उनकी शक्ति है, यही उनका जीवन है और इन सबके परिवर्तनशील जीवन के बारे में हमें पर्याप्त ज्ञान है। अतः हम यह कह सकते हैं कि पृथ्वी के धरातल पर होने वाले समस्त परिवर्तनों का एक मात्र कारण सूर्य ही है।

(३) गुरुत्वाकर्षण-शक्ति—यह एक अदृश्य शक्ति है जो निरन्तर अपने कार्य में संलग्न रहती है। यह सदैव पृथ्वी के धरातल में संतुलन लाने के लिए प्रयत्न-शील रहती है। अव्यवस्था इसके स्वभाव के परे है।

ऊपर जिन शक्तियों का वर्णन किया गया है वे अपने कार्यों में स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यदि हम उनकी क्रियाओं का गहन निरीक्षण करें तो उनमें हमें एक क्रम मिलता है। वास्तव में पृथ्वी के धरातल पर पाई जाने वाली अन्यान्य भौतिक दशाओं में पारस्परिक गहरा सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध के आधार पर विकास का सिद्धांत न केवल चेतन संसार में अपितु जड़ संसार में भी परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए पर्वतों को ले लीजिए। आज हम उनके नाम, आकार, ऊँचाई तथा दिशा के अध्ययन से सन्तुष्ट नहीं हो सकते हैं। हमारा विश्वास है कि पर्वत अचल नहीं हैं। वे परिवर्तनशील हैं, अतः हम उनके विकास का अध्ययन करना चाहते हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि आंतरिक तथा बाह्य शक्तियों ने उनके निर्माण में क्या योग दिया है तथा वे किन-किन अवस्थाओं से गुजर चुके हैं क्योंकि "A landscape has a definite life history during which it shows a series of gradual changes, whereby the initial forms pass through a series of sequential forms to an ultimate form." यही कारण है कि आज हम पर्वतों को उनकी अवस्था के अनुसार विभाजित करते

हैं। हम यह निश्चित करने का प्रयास करते हैं कि अमुक पर्वत किस अवस्था—तरुण, प्रौढ़, वृद्ध—से गुजर रहा है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि एक पर्वत घिसते-घिसते निचले मैदान में परिणत हो गया है। कहीं इस परिवर्तन का क्रम बीच में ही टूट गया और उसका पुनः जन्म हो गया। मोड़दार पर्वतों (Folded Mountains) का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहाँ आज ये हिमालय जैसी गगनचुम्बी श्रेणियाँ खड़ी हैं, वहाँ कभी टेथीज (Tethys) सागर लहरें मारता था। इतिहास दुहराता है कि भविष्य में फिर यही श्रेणियाँ निचले पठारों (Peneplains) में परिणत हो सकती हैं।

नदियाँ भी इसी सिद्धांत का प्रतिपादन करती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में बहने वाली तेज पतली धाराएँ मैदान में आकर एक महानदी का रूप धारण कर लेती हैं। नदी अपनी तरुण अवस्था में लड़खड़ाती, झरनों में गिरती, ठोकर खाती, शोर मचाती तीव्र गति से अपने मार्ग में बढ़ती चलती है। मैदान में पहुँचकर नदी अपने बचपन की आदतों पर संयम करती है। गम्भीरता को अपना आभूषण बनाती है, चौड़ी तथा गहरी बनती हुई, महानदी का रूप धारण करती है। उसमें प्रौढ़ता के सारे लक्षण विद्यमान हो जाते हैं। जैसे-जैसे वह अपने मुहाने की ओर बढ़ती है, उसकी गति मन्द पड़ जाती है, वह मिट्टी के कणों को छोड़ती जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह वृद्धावस्था के कारण अब अधिक भार नहीं वहन कर सकती, नदी अनेक धाराओं में बहने लगती है और अन्त में वह सागर अथवा झील में गिर कर अपने अस्तित्व को विलीन कर देती है। इससे परिवर्तन का सिद्धांत स्वयं सिद्ध हो जाता है।

आइये; अब वायुमण्डल में भ्रमण करें। यहाँ भगवान भास्कर की ही लीला का साम्राज्य है। सूर्यप्रकाश के असमान वितरण के कारण ही संसार के कुछ क्षेत्र शीत से तो कुछ ताप से पीड़ित हैं। वायुमण्डल की समस्त अशान्ति में सूर्य का ही हाथ है जिसका परिणाम वायुपेटियाँ, तूफान तथा चक्रवात (Cyclone) हैं।

ये तो रही भौतिक संसार की बातें। अरे, पौधों तथा पशुओं की दुनिया में भी परिवर्तन का भयंकर भूत क्रियाशील है। वहाँ भी हमें अवस्था के सूत्र को दुहराना पड़ता है। कुछ पौधों को हम एक समय शैशवावस्था में, दूसरों को प्रौढ़ावस्था में, तो अन्य को वृद्धावस्था में पाते हैं और दूसरे समय उनका अवस्था-क्रम परिवर्तित मिलता है। नियति का यही चक्र पशुओं के संसार में भी अपना कार्य निरन्तर करता रहता है। अतः हमारे लिए यह परमावश्यक हो जाता है कि हम पौधों तथा पशुओं की हर दशा का अध्ययन विकास के अन्तर्गत ही करें।

परिवर्तन मनुष्य के जीवन का महामन्त्र है, परिवर्तन ही जीवन है। महात्मा बुद्ध आवागमन अथवा परिवर्तन से ऊब गये और निर्माण का मार्ग ढूँढा, परन्तु निष्ठुर परिवर्तन आज भी अपना सिक्का जमाये हुए है। वह अजर है, अमर है। मनुष्य अत्यन्त परिवर्तनशील प्राणी है। समय रङ्ग बदलता है, मनुष्य भी गिरगिट की भाँति घड़ियों के स्थान पर पलों में रङ्ग बदलता है, उसके विचार बदलते हैं, समाज बदलता है, संस्कृति बदलती है। उसकी हर क्रिया में परिवर्तन झलकता है। उदाहरण के लिए किसी बस्ती को ही ले लीजिए। यद्यपि उसकी उत्पत्ति की ठीक तिथि तथा आकार का बताना कठिन है, परन्तु यह बात सोलह आने बुनियादी सत्य है कि आरम्भ में सभी बस्तियों का आकार बहुत ही छोटा होता है। शनैः-शनैः वहाँ जनसंख्या बढ़ती है, बस्ती विस्तृत होती है और दो झोपड़ों का पुरवा नगर का स्वरूप धारण कर लेता है। उदाहरणार्थ कानपुर को ले लीजिए जो आज उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा नगर है। केवल दो सौ वर्ष पहले वह एक छोटा सा ग्राम था, परन्तु आज एक उच्च कोटि का नगर है। निम्नलिखित तालिका कानपुर नगर की जनसंख्या के विकास पर प्रकाश डालती है।

वर्ष	जनसंख्या
१८७१	१,२२,७००
१८८१	१,५१,४४४
१८९१	१,८८,७१२
१९०१	१,६९,१७०
१९११	१,७८,५५७
१९२१	२,१६,४८६
१९३१	२,[illegible],७५५
१९४१	४,८७,३२४
१९५१	७,०५,३[illegible]३

वास्तव में किसी नगर की जनसंख्या की गणना का इतना महत्व नहीं है जितना उसके विकास का। अमुक नगर का इतिहास क्या है? वह अपनी विकास की किस अवस्था से गुजर रहा है? क्या वह पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका है या नहीं? इस प्रकार के कुछ प्रश्न हैं जिनके उत्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। हर नगर का अपना निज का इतिहास है। उत्तर प्रदेश में सन् १९३१ में एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले केवल ८ नगर थे, सन् १९४१ में १२ तथा सन् १९५१ में १६। इन दस वर्षों

में उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या में ११·८% की वृद्धि हुई, अथवा सन् १९५१ में जनसंख्या ५६,५४४,४८६ से बढ़कर ६३,२५४,११८ हो गई। साथ ही जनसंख्या का घनत्व ४९८ से ५५७ हो गया। ग्रामीण जनसंख्या में इन दस वर्षों में केवल १०·२% की ही वृद्धि हुई जबकि नागरिक जनसंख्या में २२·९% की वृद्धि हुई। यही नहीं, अपितु हर नगर अथवा ग्राम में वृद्धि की गति समान नहीं है। इन्हीं दस वर्षों में देहरादून की जनसख्या में ८४·४%, रामपुर में ५०·३%, कानपुर में ४४·७%, लखनऊ में २०·३%, इलाहाबाद में २७·६% वृद्धि हुई जबकि शाहजहाँपुर में ४·८% की कमी हुई।

इस प्रकार परिवर्तन का सिद्धांत जनसंख्या तथा बस्तियों के विकास में भी लागू होता है। वास्तव में हर मानवीय क्रिया इस सर्वव्यापक सिद्धांत के अन्तर्गत है। ब्रुंश (Brunhes) ने लिखा है, "Retrogression and progression : these human phenomena, like all terrestrial phenomena, never remain stationary; we must study them in evolution, catching them on the march and seizing them, so to speak, in full activity. They are animated by a definitely determined movement. We must study them as we study bodies in motion. We must determine definitely the point of space and the moment of time at which they are produced, then point out the direction and observe the speed of the movement itself. Such must be one of the dominant purposes of those who observe Geographical facts, for progression is as true of human facts as of the facts of the physical order."

परिवर्तन का सिद्धांत इस विचार का प्रतिपादन करता है कि किसी भी तथ्य (Fact) या घटना (Phenomenon) का अध्ययन पृथक् नहीं किया जा सकता।

खण्ड ३

पृथ्वी सम्बन्धी एकता का सिद्धान्त

(The Principle of Terrestrial Unity or the Principle of Inter-connexion)

इस सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि विश्व के सभी भौगोलिक तथ्य, जड़ तथा चेतन, एक दूसरे से सम्बन्वित हैं। कोई भी स्वतन्त्र इकाई नहीं कहा जा सकता, अतः उनका पृथक् अध्ययन असम्भव है।

स्वयं वायुमण्डल इस सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। इस श्रृंखला की शिरोमणि कड़ी सूर्य-प्रकाश ही है। ताप के असमान वितरण से वायु के दबाव में अन्तर उत्पन्न होते हैं और हवाओं का जन्म होता है। हवाओं के कारण आँधी, तूफ़ान, चक्रवात, टाईफून तथा टार्नैडो आते हैं। सच पूछिए तो वर्षा का राजा इन्द्र नहीं अपितु सूर्य है। सूर्य-ताप से समुद्र का पानी भाप बनता है; भाप सघन होकर बादल का रूप धारण कर लेती है; बादल हवा के द्वारा भूतल पर फैल जाते हैं और पर्वतों से टक्कर खाकर अथवा ऊँचे उठकर शीत पाकर बरस पड़ते हैं। वर्षा का पानी नदियों द्वारा फिर समुद्र में एकत्र हो जाता है। इस प्रकार एक वृत्त पूरा हो जाता है।

इसी प्रकार पर्वतों तथा नदियों में जो सर्वथा विभिन्न इकाइयाँ जान पड़ती हैं, परस्पर गहरा सम्बन्ध है। नदियाँ पृथ्वी के खालों में (Geo. Synclines) पर्वतों से मिट्टी ला-लाकर एकत्र किया करती हैं, पर्वत घिसते हैं, समुद्र तल भरते हैं। सहस्त्रों वर्षों में यही समुद्रतल में पड़ी हुई मिट्टी पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों के प्रभाव से नवीन मोड़दार पर्वतों (Folded Mountains) में परिणत हो जाती हैं। जहाँ एक समय सागर लहरें मारता था वहाँ कालांतर में हिमालय जैसी श्रेणियाँ खड़ी हो जाती हैं। इस क्रांति के पीछे किसका हाथ है? उत्तर मिलता है नदियों का। फिर, नदियों का श्रोत कहाँ है? पहाड़ों में। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पर्वतों तथा नदियों में पारस्परिक गहरा सम्बन्ध है। एक का अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है।

वनस्पति-संसार में भी इसी का तीव्र स्वर सुनाई पड़ता है। हर जलवायु-प्रदेश (Climatic Region) की अपनी वनस्पति होती है। विषुवत रेखीय बनों में वर्षा तथा तापक्रम की निरन्तर अधिकता के फलस्वरूप वनस्पति का बाहुल्य रहता है। बड़े-बड़े पेड़, लम्बी-लम्बी शाखाएँ, सघन पत्तियाँ और फिर नीचे बेलें और झाड़ियाँ होती हैं। इस सघन बनस्पति के फलस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती है। इसके विपरीत, मरुस्थलों की शुष्क जलवायु में बनों का एकमात्र अभाव है। उनके प्रतिनिधि काँटेदार झाड़ियाँ हैं। इन दोनों उदाहरणों से जलवायु तथा वनस्पति का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट है।

क्रमबद्ध वनस्पति-विज्ञान ने वातावरण के जटिल सम्बन्ध की पुष्टि की है। निःसन्देह किसी प्रदेश की वनस्पति का साधारण दृश्य ही सर्वोपरि है। जब हम अमुक प्रदेश का स्मरण करते हैं, तो वहाँ के आम, अंजीर अथवा अंगूर मस्तिष्क में नहीं आते, अपितु "The ensemble of all the various plants which make up vegetation as a whole."

वे अमुक देश के भूमि-विन्यास को प्रभावित ही नहीं करते, उसे वे एक "विशिष्ट" दृश्य देते हैं। स्टेपीज, सवाना, टैगा तथा विषुवत रेखीय वन विभिन्न समूहों का परिचय देते हैं। वही पौधे एक वातावरण में पनप सकते हैं जो अपने को उस वातावरण के अनुकूल बना लेते हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्हें अपनी ऊँचाई, पत्तियों, छाल, जड़ों आदि को वातावरण के अनुसार बनाना पड़ता है। उनकी जातियों में चाहे जो भी विभिन्नताएँ हों, फिर भी वे एक वनस्पति-समुदाय (plant Association) का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं; उनमें एक सामाजिक जीवन की भावना का आभास मिलता है।

वनस्पति-भूगोल की भाँति पशु भूगोल में भी पारस्परिक-सम्बन्धों के सिद्धान्त का प्रतिपादन होता है। यह सत्य है कि पशुओं में पौधों की अपेक्षा अधिक ज्ञान होता है, वे एक स्थान से दूसरे स्थान जा सकते हैं और पौधों की अपेक्षा किसी भी वातावरण में अपने को सुगमतापूर्वक ढाल सकते हैं। परन्तु जाति-विभेद के होते हुए भी उनमें सामाजिक जीवन की उत्कृष्ट भावना विद्यमान दीखती है। डा० राधा कमल मुकर्जी ने लिखा है, "The war of nature has played an important part in the evolution of animal organization, but it is not fratricidal. There are beasts of prey and beasts preyed upon. The former have developed claws, fangs, speed, cunningness and strength the latter protective organs, means of combination, kindness, wariness and many other qualities."[१]

फिर, पौधों तथा पशुओं के विभिन्न समाजों में अलौकिक सम्बन्ध दीखता है। घास के मैदानों में ही घोड़ों की उत्पत्ति तथा विकास की कल्पना की जा सकती है। खेतिहर पौधों की वृद्धि से अन्न पर निर्भर रहने वाले पशुओं तथा पक्षियों की संख्या बढ़ जाती है। बन के कट जाने के पश्चात् उसके वनस्पति तथा पशु समाज दोनों ही बदल जाते हैं। उसमें भेड़-बकरियों का प्रवेश सदैव के लिए जंगली वृक्षों को कह देता है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने सत्य ही लिखा है, "Plants and animal communities are systems of correlated working parts, the relations of some being independent and of others reciprocal, they are physiologically different in different habitats, which they alter in their turn, in a continuous process."[२]

---

[१] Dr. R. K. Mukerjee : *Regional Sociology.*

[२] Dr R. K. Mukerjee : *Regional Sociology.*

मानव भूगोल का अंग-प्रत्यंग एक दूसरे से सम्बन्धित है। मानव भूगोल के स्थूल शरीर का हृदय मनुष्य है, अतः वह नाना प्रकार के सम्बन्धों के आकर्षण का केन्द्र है। उसके किसी भी पक्ष को ले लीजिए......स्वयंसिद्ध है। जनसंख्या के वितरण का भौतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। मनुष्य कहीं भी रहे, वह शुद्ध वायु, सूर्य-प्रकाश तथा जल के बिना नहीं रह सकता। चाहे कोई कोल-भील हो अथवा प्रतिष्ठित लार्डवंश का प्रतिनिधि, प्रत्येक के लिए जल की आवश्यकता समान है। यदि हम प्राचीन नगरों के इतिहास का अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी उत्पत्ति में जल का कहाँ तक हाथ रहा है। सहस्रों वर्ष पूर्व जब नहरें अथवा पम्प नहीं थे, नगरों का नदियों तथा झीलों के किनारे बसना अनिवार्य था। लन्दन, शिकागो, काहिरा, पेरिस, बनारस, प्रयाग, कानपुर, कलकत्ता, दिल्ली आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

जनसंख्या के विकास में समतल मैदानों का विशेष हाथ रहा है। आज भी वे मानव नाटक के प्रशस्त रंगमंच हैं। संसार की खाद्यसामग्री का मुख्य साधन खेती है जिस पर भौतिक दशाओं का नियंत्रण है। पर्वतीय क्षेत्रों की कँकरीली-पथरीली मिट्टी खेती के लिए सर्वथा अनुपयुक्त होती है, अतः वहाँ जनसंख्या का घनत्व निचले मैदानों की अपेक्षा बहुत कम होता है। फिर प्राकृतिक दशाएँ आवागमन के साधनों को भी प्रभावित करती हैं जिन पर उद्योग-धन्धों की उत्पत्ति तथा विकास निर्भर है। सड़कों तथा रेलवे लाइनों के निर्माण में पर्वत, पठार, नदी, झील आदि को दृष्टि-कोण में रखना पड़ता है। कभी पुल अथवा सुरंग के स्थान पर सड़क अथवा रेलवे लाइन का लम्बा टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग अधिक श्रेयस्कर होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक स्थलीय संगठन किस प्रकार आवागमन के साधनों तथा अन्य उद्योग-धन्धों को प्रभावित करता है और जनसंख्या के वितरण पर अपना नियंत्रण सिद्ध करता है।

मनुष्य तथा जलवायु के पारस्परिक सम्बन्ध की कहानी भी ऐसी ही है। सारे संसार का ५०% भाग अत्यन्त शीत, अत्यन्त ताप अथवा अत्यन्त आर्द्रता के कारण मनुष्य के अधिक उपयोग का नहीं है, फलतः इस पर मुश्किल से २० मनुष्य प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं। जहाँ ये जलवायु सम्बन्धी आपत्तियाँ नहीं हैं, जनसंख्या अधिक घनी है यहाँ तक कि मानव बस्तियाँ छत्तों के रूप (hive) में दीख पड़ती हैं। फिर जलवायु ही अमुक क्षेत्र के उत्पादन, उपभोग तथा व्यापार को निश्चित करती है तथा मानव संस्कृति को प्रभावित करती है।

किसी देश के सांस्कृतिक विकास पर उसके भूगर्भ का भी प्रभाव पड़ता है।

प्रकृति खनिज पदार्थों के वितरण में किसी भी माने में समदर्शी नहीं कही जा सकती और दुर्भाग्यवश मनुष्य इनके विश्ववितरण को बदल नहीं सकता। आधुनिक कलयुग (Machine Age) में हर देश तथा समाज के लिए इनकी अतीव आवश्यकता है। ये ही उनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार हैं। यही नहीं यदि हमारा अनुमान सत्य है तो निस्सन्देह किसी देश की खनिज राशि ही राष्ट्रीय सम्पन्नता अथवा राजनैतिक शक्ति है। फिर यदि मिट्टी के तेल की आँग्ल-ईरानी समस्या पर वर्षों विवाद हो, लोरेन की खानों के लिए जर्मनी तथा फ्रांस के बीच बारम्बार गुत्थमगुत्था हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। क्षेत्रीय भूगर्भ तथा नगरों की स्थिति का एक रोचक सम्बन्ध हमें संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की 'फाल-लाइन' (Fall Line) पर मिलता है। यहाँ अनेक नदियाँ अप्लैशियन पर्वतों से निकल कर एटलाण्टिक की ओर बहती हुई झरने बनाती हैं। प्राचीन काल में इन्हीं झरनों ने छोटे-छोटे ग्रामों को आकर्षित किया। जल-शक्ति से वहाँ उद्योग-धन्धे प्रारम्भ किये गये। कालान्तर में जल-विद्युत ने उनका स्थान ले लिया। उद्योग-धन्धे बड़े पैमाने पर होने लगे; वही प्राचीन छोटे-छोटे ग्राम आज बाल्टीमोर, वाशिंगटन, रिचमाण्ड, रेले, शारलोटे, कोलम्बिया, आगस्टा, मैकान तथा अटलान्टा के रूप में जगद्विख्यात हैं।

मनुष्य का समुद्रों से भी निकट का सम्बन्ध है। जो किसी समय बाधा के रूप में गिने जाते थे, आज के विशाल जल-मार्ग बन गये हैं। यही कारण है कि राष्ट्र समुद्रतट के कुछ भाग पर अपना आधिपत्य समझता है और ट्रीस्ट (Triest) तथा स्तम्बोल की समस्या उठ खड़ी होती है।

फिर मनुष्य का पशु तथा पौधों से सीधा सम्बन्ध है। एक ओर वह भोजन तथा वस्त्र के लिए उन पर आश्रित है, दूसरी ओर वह उनके भौगोलिक विवरण को बदल सकता है। डा० राधा कमल मुकर्जी ने लिखा है, "The human group must be considered in stable equilibrium not merely with reference to temperature, humidity, sunshine, altitude, etc., but also to their indirect effects, the interwoven chain of biotic communities to which it is inextricably linked, the plants it cultivates, the animals it breeds and even the insects which are indigenous to the region."[१]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" उसका अभीष्ट है।

---

[१]Dr. R. K. Mukerjee : *Regional Sociology.*

of other, should be taken as the vital centre in the wide realm of thought."—*Lord Samuel.*

भूगोल का स्थान बहुत कुछ ऐसा ही है। हम उन वैज्ञानिकों तथा विचारकों के प्रति बहुत आभारी हैं जिन्होंने मनुष्य तथा संसार सम्बन्धी ज्ञान-राशि को अपना अमूल्य प्रतिदान दिया है। जब ज्ञानराशि में निरन्तर वृद्धि के फलस्वरूप उसका विकास आवश्यक हो गया तो विभिन्न विज्ञानों का जन्म हुआ। आज विशिष्टीकरण
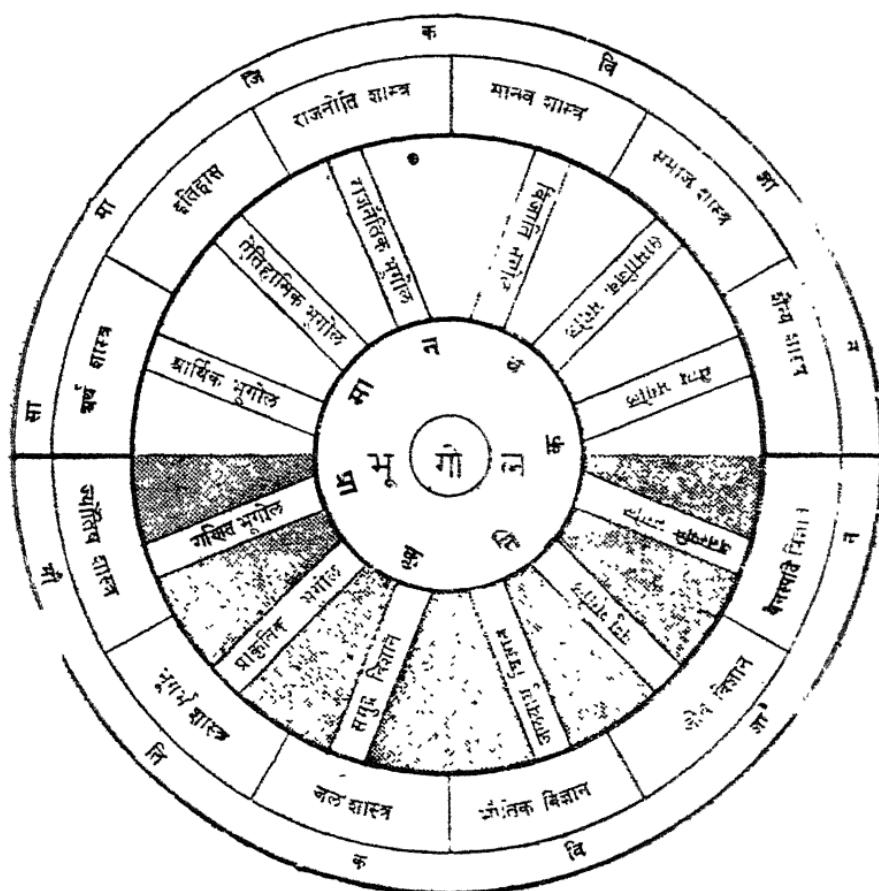
चित्र १

के कारण उनके क्षेत्र बहुत विस्तृत हो चुके हैं फिर भी उनमें पारस्परिक सम्बन्ध का अभाव नहीं है। विभिन्न भौतिक विज्ञान एक दूसरे का सहयोग प्राप्त करते हैं

विभिन्न सामाजिक शास्त्रों में पारस्परिक आदान-प्रदान चलता है। भूगोल एक बड़ा विस्तृत विज्ञान है जिसका भौतिक तथा सामाजिक सभी विज्ञानों से घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा कि चित्र १ से स्पष्ट है।

इस चित्र में एक बैलगाड़ी के पहिए द्वारा भूगोल—भौतिक एवं मानव तथा अन्य विज्ञानों का सम्बन्ध दिखलाया गया है। पहिए का केन्द्र (Centre) भूगोल है। उसके आरागज (Spokes) भूगोल की शाखाएँ हैं, उसकी पुट्ठियाँ (चक्राश) अन्यान्य विज्ञान तथा शास्त्र हैं जो आरागजों पर टिके हुए हैं तथा उसकी हाल (Iron Plate) पूर्ण विज्ञान है। चित्र से स्पष्ट है कि भूगोल दो विभागों में विभाजित है—प्राकृतिक भूगोल तथा मानव भूगोल, जिनका अपना समान महत्व है। आरागजों द्वारा प्राकृतिक भूगोल तथा मानव भूगोल की पृथक-पृथक छः-छः शाखाएँ दिखाई गई हैं जिन पर बारह भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र अवलम्बित हैं।

यदि हम इस चित्र पर मनन करें तो इससे भूगोल का क्षेत्र तथा उसका अन्य शास्त्रों पर प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में भूगोल मातृ-विज्ञान (Mother Science) है जिसके विकास के कारण दूसरे शास्त्रों का जन्म हुआ। यद्यपि विशिष्टीकरण ने उन्हें बहुत विस्तृत कर दिया है तो भी भूगोल से उनका सम्बन्ध अविच्छिन्न है और पारस्परिक आदान-प्रदान स्वयंसिद्ध है।

चूँकि पुस्तक का क्षेत्र हमें यह आज्ञा नहीं देता कि हम भूगोल तथा भौतिक विज्ञानों के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करें, अतः पाठकों से अनुरोध है कि वे स्वयं चित्र का मनन करें और उनके सम्बन्धों को स्थापित करें। यहाँ हम केवल मानव भूगोल तथा अन्य सामाजिक शास्त्रों के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करेंगे।

मानव भूगोल तथा अर्थशास्त्र
(Human Geography and Economics)

मनुष्य की भोजन, वस्त्र तथा शरण की आवश्यकताएँ सर्वोपरि हैं। वह किसी समय, किसी स्थान तथा किसी परिस्थिति में इनसे मुक्त नहीं हो सकता। फिर उसकी अन्य आवश्यकताएँ व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक, सभी अर्थशास्त्र पर आश्रित हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अर्थशास्त्र उसके जीवन का बाह्य आवरण ही नहीं अपितु आधार भी है। आर्थिक भूगोल संसार के विभिन्न क्षेत्रों के साधनों का अध्ययन करता है, उनके उद्योग-धन्धों, व्यापार तथा आवागमन

के साधनों की व्याख्या करता है। संक्षेप में आर्थिक भूगोल मनुष्य तथा वातावरण की सुविधाओं के समीकरण की विवेचना करता है। अतः अर्थशास्त्र तथा मानव-भूगोल का जिसका आर्थिक भूगोल एक विशिष्ट अंग है, सम्बन्ध स्पष्ट है। कदाचित् निम्नलिखित पंक्तियाँ अधिक उपयोगी होंगी।

> 'Say' Lords should not our thoughts be first of commerce.'
> 'My Lord Bishop, you would recommend us agriculture.'[१]

मानव भूगोल तथा इतिहास
(Human Geography and History)

सत्य बात यह है कि मानव भूगोल मनुष्य की सभ्यता का इतिहास है। "The geography of Britain is in fact the intricate product of a continuous history, geological or human."[२]

अमुक क्षेत्र के इतिहास का उसके भौतिक साधनों तथा उनके विकास से गहरा सम्बन्ध है। ग्रेट लेक्स (Great Lakes) के क्षेत्र में जब पहले पहल यूरोप निवासी पहुँचे तो उन्होंने वहाँ फर (Fur) की खोज की। कालान्तर में उन्होंने लकड़ी, लोहा तथा ताँबे आदि का प्रयोग किया। आज वहाँ उच्च कोट की खेती तथा अन्य उद्योग-धन्धे विकसित हो गए हैं। पंजाब में जहाँ पानी के अभाव से भूमि परती पड़ी थी, नहरों के निर्माण के साथ ही गेहूँ की खेती की उन्नति हो गई और वह अविभाजित भारत का खलियान बन गया। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के तराई भागों में जो पाँच-छः साल पहले दलदल तथा वन से ढके थे, आज एक कायापलट सा दीखता है। वहाँ का मानव भूगोल बदल गया है और इतिहास का नया अध्याय आरम्भ हो गया है। अतः "Both the geographer as well as the historian are well aware that these two studies are interrelated and each other can, and in certain problems must, seek illumination from the other."[३]

---

[१] William Blake.

[२] Sir H. J. Mackinder.

[३] *Encyclopedia of Social Sciences.*

मानव भूगोल तथा राजनीति
(Human Geography and Political Science)

एक प्रगतिशील समाज में मनुष्य केवल भोजन, वस्त्र तथा शरण से ही संतुष्ट नहीं हो सकता है, उसकी आवश्यकताएँ अगणित होती हैं। फलस्वरूप मनुष्य तथा वातावरण का ही नहीं अपितु मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। एक क्षेत्र की सम्पन्नता का दूसरे क्षेत्र की सम्पन्नता से गहरा सम्बन्ध है। समस्त उद्योग-धन्धों, व्यापार तथा आवागमन के साधनों का आधार पारस्परिक सहयोग ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक सब के लिए और सब एक के लिए हैं। परन्तु जब हम इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर करना चाहते हैं तो हमें निराशा ही हाथ लगती है। यदि इस सुन्दर समन्वय की उत्कृष्ट भावना होती तो आज विश्व की शान्ति क्यों खतरे में पड़ती ? जब हम विश्व अशान्ति पर विचार करते हैं तो इसका कारण विभिन्न राष्ट्रों की स्वार्थ-लिप्सा में मिलता है। जो राष्ट्र आज अपने भौतिक साधनों से लाभ उठाकर महान राष्ट्र बन गए हैं वे पिछड़े हुए देशों पर अपना आधिपत्य कायम रखना चाहते हैं। इन राष्ट्रों तथा इनकी भौगोलिक परिस्थितियों के पारस्परिक सम्बन्ध के अध्ययन का नाम राज-नैतिक भूगोल है जो मानवभूगोल की ही एक शाखा है।

मानव भूगोल तथा मानव शास्त्र
(Human Geography and Anthropology)

"Anthropology is the science of groups of men and their behaviour and productions." इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि मानवशास्त्र का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और वह मनुष्य का व्यक्ति के रूप में नहीं एक समुदाय के रूप में अध्ययन करता है। मानवशास्त्र के अन्तर्गत जो अनुसन्धान किए गये हैं उन्होंने मानवसमाज की विभिन्न जातियों के विकास पर प्रकाश डाला है। चूँकि मानव भूगोल भी मनुष्य की जातियों (Races of Mankind) का अध्ययन आव-श्यक समझता है अतः वह मानवशास्त्र के निकट सम्बन्ध में आ जाता है। एक अफ्रीका का हब्शी (Negro) विषुवत रेखीय प्रदेश में घण्टों कठिन परिश्रम कर सकता है, परन्तु यदि वहाँ एक यूरोपियन अपनी हैट कुछ मिनटों के लिए उतार ले तो वह छुई-मुई के पौधे की भाँति कुम्हला जाता है। इससे विजाति-विवरण पर वातावरण का प्रभाव मान्य है। मानव भूगोल के अध्ययन का उद्देश्य यह है कि वह इस बात का निर्णय करे कि वातावरण कहाँ तक मनुष्य की क्रियाओं को प्रभावित करता है और

कहाँ तक विजातीय गुणों को (Racial Qualities) दूसरे पक्ष में प्रवेश करते ही उसे मानवशास्त्र (Anthropology) की सहायता लेनी पड़ती है, अतः मानवशास्त्र तथा मानवभूगोल का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

मानव भूगोल तथा समाजशास्त्र
(Human Geography and Sociology)

"Sociology is the science of development and nature and laws of human society." समाज-शास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र मनुष्य की सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याएँ हैं। मनुष्य स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज की एक इकाई है। सम्पूर्ण मानव समाज समुदायों में विभक्त है, यह मानव-भूगोल का एक महत्वपूर्ण तथ्य (Fact) है। अन्यान्य उद्योग-धन्धों तथा आदान-प्रदान का आधार यही सामाजिक गुण है। हर समाज के अपने नियम, रीति-रिवाज तथा प्रथाएँ होती हैं। हर साधारण सदस्य उनका पालन करता है। दूसरे सदस्यों से मिल-जुल कर रहता है तथा अपना उद्यम करता है। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक परिस्थितियाँ मनुष्य को उसी प्रकार प्रभावित करती हैं जिस प्रकार उसका भौतिक वातावरण। ये समस्याएँ सामाजिक भूगोल के अध्ययन के अन्तर्गत आती हैं जो वास्तव में मानव भूगोल का एक अंग हैं।

मानव भूगोल तथा सैन्यशास्त्र
(Human Geography and Military Science)

मनुष्य जिसने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए अन्यान्य मशीनों का आविष्कार किया है, स्वयं अपना नाश करने के लिए भी मशीनें बना डाली हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। आज संसार राजनैतिक गुटों में विभाजित है, चाहे वह आर्थिक रूप में हो अथवा राजनैतिक। महायुद्ध इसी प्रवृति का परिणाम स्वरूप है। युद्ध में लड़ाकू फौजों को क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं से परिचय प्रात करना अनिवार्य होता है, इन्हीं की सहायता से उनकी सैनिक योजनाएँ बनती हैं। क्षेत्र का मानचित्र उन्हें विशेष सहयोग देता है। सैन्य-संचालन, आक्रमण तथा शरण पर भौगोलिक वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। ग्रेट ब्रिटेन की द्वीपीय स्थिति ने उसे महाद्वीपीय युद्धों से पृथक रक्खा है। वर्षा, कुहरा, वायु, तथा धाराएँ सेनाओं के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित करती हैं फिर मनुष्य स्वयं युद्ध में भाग लेते हैं। कुछ जातियाँ जन्म से योद्धा होती हैं और कुछ की आस्था भोग-विलास में होती है। इन सब समस्याओं पर विचार करने से मानव-भूगोल तथा सैन्य-शास्त्र का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

अध्याय २

मानव भूगोल के विकास का इतिहास

भूगोलवेत्ताओं के प्रारम्भिक लेखन से ही भूगोल का प्रारम्भ होता है। भूगोल का पठन एवं लेखन अति प्राचीनकाल से ही प्रारम्भ हो गया था। मूल सत्य तो यह है कि भूगोल का प्रारम्भ गृह से ही होता है। संसार का कोई भी विज्ञान भूगोल की अपेक्षा अधिक प्राचीन होने का अधिकारी नहीं हो सकता। आधुनिक भूगोल का प्रारम्भ १६ वीं शताब्दी से होता है। उस काल से ही भूगोल ने पृथ्वी विज्ञान के रूप में पुकारे जाने का श्रेय प्राप्त किया है। उस काल के पूर्व यह केवल पृथ्वी का वर्णन मात्र था।

भूगोल की समस्त शाखाओं को स्थापित करने का श्रेय यूनानी लोगों को है और उन लोगों ने ही आगे चलकर भूगोल की समस्त शाखाओं को निर्धारित किया। थेल्स आव मिलेट्स (Thales of Miletus), अनेक्जिमेण्डर (Anaximander), अरस्तू (Aristotle), इरैटस्थनीज़ (Erathosthenes), हिप्पोक्रेटिस (Hippocrates) एवं हिरोडोटस (Herodotus) जैसे यूनानी भूगोलशास्त्री प्रथम श्रेणी के दार्शनिक थे। भौतिक एवं गणित भूगोल का अध्ययन विस्तृत रूप से किया गया था परन्तु मानव को महत्व नहीं प्राप्त था। अगरथेसाइड्स (Agarthacides) (१७०-१०० ई० पू०) ने इथियोपियन जातियों का विभाजन उनके भोजन के अनुसार किया था। यूनानी विचार उच्चकोटि का दार्शनिक भव्य एवं सत्य विचार था। अभाग्यवश भूगोल का विकास यूनानी सत्ता के पतन के फलस्वरूप रुक गया।

तत्पश्चात् रोमन विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ। वास्तव में वे व्यापारिक एवं शासन सम्बन्धी या सैनिक विजय की योजनाओं ऐसी समस्याओं में व्यस्त थे। उपयोगितावादी शक्ति विकसित हुई। उनके अधिकांश कार्यों का लक्ष्य व्यापार को अधिकार में करने की सम्भावनाओं पर केन्द्रित था और उसके द्वारा वे व्यापारिक और प्रादेशिक राज्यों की विजय की महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करना चाहते थे। भूगोल के विषय को विज्ञान का रूप देने का प्रयास नहीं किया गया था। वास्तव में भूगोल के उद्देश्य एवं शक्ति विज्ञान के रूप में नष्ट हो चुके थे। उस समय के समस्त भूगोलवेत्ताओं में दो को उच्च स्थान प्राप्त है। उनमें से एक स्ट्रेबो (Strabo)

(६३ ई० पू०-२६ ई०) और दूसरे टॉलमी (Ptolemy) (१५० ई०) महोदय थे। परन्तु उन दोनों में से कोई भी रोम निवासी न था। उन दोनों ने ग्रीक भाषा में लिखा था।

मध्यकाल के प्रारम्भ में मुसलमानों का ध्यान भूगोल की ओर कई कारणों से आकर्षित हुआ। अरब साम्राज्य का विस्तार चीन की सीमा से अटलांटिक तक बढ़ रहा था। उन लोगों ने गणित भूगोल पर अधिक से अधिक ध्यान दिया।

१४६२ से १५२३ ई० का समय महत्वपूर्ण आविष्कारों का युग था। इसी युग में कोलम्बस (Columbus), वास्को डि गामा (Vasco de Gama) एवं मैगलन (Magellan) आदि हुए थे। बर्नहार्ड बेरिनियस (Bernhard Varenius) ने १६५० ई० में अपनी (Geographia Generalis) नामक पुस्तक प्रकाशित कर इस विषय में एक नवीन अध्याय को जोड़ दिया और भूगोल-विषय में एक नूतन युग का सूत्रपात किया। उसने मानव भूगोल को विशेष भूगोल की श्रेणी में स्थान देने का प्रयास किया परन्तु अपनी भूल को समझने के पश्चात् उसने उस कार्य के लिए क्षमा माँगी। इस प्रकार के कार्य करने के कारणों को स्पष्ट करते हुए उसने यह बताया कि मानव भूगोल का समावेश रीतिरिवाजों को महत्व देने के लिए किया गया था।

१७५० ई० के अन्त में ही भूगोल की नींव पड़ चुकी थी और इसी को आधार-शिला मानकर अग्र पचास वर्षों तक भूगोल का निर्माण हुआ। इस विशद निर्माण के कार्य का श्रेय दो व्यक्तियों को है, वे अलकजेण्डर वान हाम्बोल्ट (Alexander Van Humboldt) एवं कार्ल रिटर (Karl Ritter) महोदय थे।

खण्ड १

मानव भूगोल में ईश्वर सत्तावादी (Theocratic), भू-सत्तावादी (Geocratic) एवं मानव-सत्तावादी (Weocratic) विचार धाराएँ

ईश्वर सत्तावादी (Theocratic; Theo (G. K.) = God; Crasy = Rule)—अतएव ईश्वर-सत्तावादी शब्द मनुष्य एवं समाज पर ईश्वरीय सत्ता में विश्वास करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। भू-सत्तावादी (Geocratic) शब्द पृथ्वी की शक्ति में विश्वास करनेवालों के लिए प्रयुक्त होता है, उदाहरण स्वरूप प्राकृतिक वातावरण का मनुष्य एवं उसके समाज पर प्रभाव। इसी प्रकार मानव-सत्तावादी

(Weocratic) शब्द का अर्थ मनुष्य का अपने और समाज पर शासन करने में विश्वास रखने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त होता है। वर्तमान अध्याय में उपर्युक्त तीन विचारधाराओं का समावेश भूगोल विज्ञान के विकास की तीन अवस्थाओं का द्योतक है।

अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्यकालीन भूगोलवेत्ताओं ने विषय के थियोक्रेटिक (Theocratic) दृष्टिकोण को ही सर्वश्रेष्ठ माना। उनका विचार था कि भूतल की प्रत्येक वस्तु ईश्वर की उत्पन्न की हुई है, यहाँ तक कि मनुष्य भी जो कि समस्त जीवधारियों में श्रेष्ठ है ईश्वर द्वारा निर्मित समझा गया। ईश्वर ने स्वयं ही एक ऐसे रंगमंच का निर्माण किया है जिस पर सर्वशक्तिमान के संकेतमात्र पर मानव कठपुतली की भाँति अपने समस्त कार्य-कलापों को सम्पन्न करता है। जब ऐसी विचारधारा को प्रौढ़ता प्राप्त हुई तब मानव अभिनय को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। समस्त मानव क्रियाएँ एवं संस्थाएँ ईश्वर का आदेश मात्र समझी गईं और मनुष्य उसके संकेत पर नाचता हुआ माना गया। इस काल तक भूगोलवेत्ता केवल 'क्या और कहाँ' के उत्तर से ही संतुष्ट थे। उन्होंने 'क्यों' प्रश्न के उत्तर की चिन्ता न की। अतएव हम मानव भूगोल का महत्वपूर्ण विकास नहीं पाते। हम्बोल्ट और उसके शिष्यों के काल तक यह विचारधारा ज्यों की त्यों बनी रही। यहाँ तक कि रिटर महोदय ने भी जो एक प्रतिभाशाली इतिहासकार हुए हैं थियोक्रेटिक (Theocratic) दृष्टिकोण का ही प्रतिपादन किया है। वियोक्रेटिक (Weocratic) युग में निवास करते हुए हम ईश्वरीय सत्ता से मुक्त नहीं हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के भूगोल को जियोक्रेटिक (Geocratic) भूगोल के रूप में पुकारा जा सकता है जो यह इंगित करता है कि पृथ्वी या प्रकृति स्वयं मनुष्य के रहन-सहन को निश्चित करने में बहुत बड़ा भाग लेती है जो कि एक विशेष प्रकार के क्षेत्र में विकसित होती है। महाशय डारविन (Darwin) और दूसरे जीव वैज्ञानिकों ने पौधे में और पशु (मनुष्य को लेकर) के जीवन में विकासवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उन लोगों ने जीवधारियों पर वातावरण के प्रभाव को विशेष रूप से महत्व प्रदान किया है। वान हम्बोल्ट, कार्ल रिटर एवं रेटजेल आदि प्रमुख आचार्यों ने इस वैज्ञानिक तथ्य का भूगोल में समावेश किया है। भूसत्ता में विश्वास करने वाले लोग नियतिवाद (Determinism) का अनुमोदन करते हैं जब कि मानव सत्ता में विश्वास करने वाले सम्भववाद (Possi-

bilism) में विश्वास करते हैं। मानव-सत्ता संबन्धी विचारधारा भूगोल के लिए वरदान स्वरूप है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ और बीसवीं शताब्दी में पूर्ण रूप से विकसित हुई। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि जियोक्रेटिक (Geocratic) विचारधारा एक पुरानी विचारधारा है। आज के मानव सत्ता के युग में भी भू सत्ता वाली विचारधारा अपनी स्थिति पर दृढ़तापूर्वक डटी हुई है।

हम्बोल्ट (Humboldt), रिटर (Ritter), रेटजल (Ratzel), बेकर (Baker), ई० सेम्पिल (E. Semple), एवं टेलर (Taylar) आदि भूगोल-पण्डितों ने भू-सत्ता सम्बन्धी विचारधारा का समर्थन किया है। यदि हम एन्टारकटिका के विशाल क्षेत्र, मध्य आस्ट्रेलिया, सहारा, उत्तरीय कनाडा, ग्रीनलैण्ड, उत्तरी साइबेरिया एवं विश्व के पहाड़ी क्षेत्रों के भूगोल का अध्ययन करें और यह जानने की चेष्टा करें कि मानव ने किस प्रकार यहाँ प्रभुत्व प्राप्त किया है तो हमें मानव और उसके वितरण पर प्रकृति का पूर्ण नियन्त्रण दृष्टिगोचर होता है। उपर्युक्त देशों की भूमि अधिक शीतल, शुष्क, नम या ऊबड़-खाबड़ है, अतएव इन प्रदेशों में मनुष्य को प्रकृति पर विजय प्राप्त करना दुष्कर है। प्रकृति का यह नियन्त्रण आज भी उतना ही कड़ा है जितना शताब्दियों पूर्व था। यहाँ तक कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक प्रकृति का मानव पर नियन्त्रण सर्वव्यापी था। तत्पश्चात् मानव अपनी बुद्धि के विकास के साथ अपने रहन-सहन के स्तर को उच्चतर बनाता गया। उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के भूगोल पण्डितों ने बढ़ती हुई विशिष्ट कला एवं मानव शक्ति से प्रकृति को अनुकूल बनते हुए देखा। उन्होंने यह निरीक्षण किया कि मानव और उसका प्राद्योगिक विज्ञान प्रकृति के ऊपर निरन्तर विजय में संलग्न है। आधुनिक भूगोलवेत्ताओं ने पेरिस, बर्लिन, लंदन, न्यूयार्क, शिकागो एवं बम्बई आदि स्थानों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मानव सत्ता सम्बन्धी विचारधारा का समर्थन किया है। प्राचीन भूगोल-शास्त्रियों के विचारानुसार यह हास्यास्पद-सा प्रतीत होता है कि मानव उन्हीं अभिरुचि उत्पादक सम्भव दिशाओं को चुनता है जो उसके लिए स्फूर्तिदायिनी एवं उत्साह-वर्धक होती हैं। विश्व के उन्नतिशील प्रदेश एवं समाज इस बात के द्योतक हैं कि प्रकृति मानव के अनुकूल रही है। फ्रांसिस बेकन (Francis Bacon) का कथन है कि प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए हमें प्रथम उसकी आज्ञा का पालन करना होगा, "In order to master nature we must first obey her."

खण्ड २

अलेक्जेंडर वान हम्बोल्ट (Alexander Von Humboldt) (१७६९-१८५९) तथा कार्ल रिटर (Karl Ritter) (१७७९-१८५९)

'Cosmos' और 'Allegemeine Vergleichende Erdkunde' पुस्तकों के क्रमानुसार लेखक वान हम्बोल्ट और कार्ल रिटर हैं। दोनों लेखक उच्चकोटि के भूगोल-वेत्ता हैं। भूसत्ता सम्बन्धी विचारधारा को भूगोल के क्षेत्र में प्रतिपादित करने का श्रेय इन्हीं दोनों लेखकों को है। कारणतत्व (Causation) को भूगोल के क्षेत्र में लाकर उसे भूगोल का रूप दिया। हम्बोल्ट महोदय ने भूगोल-शास्त्र के प्रत्येक अंग पर प्रकाश डाला है। वे वनस्पति शास्त्र के पंडित थे और महाशय कार्ल रिटर बहुत बड़े इतिहासकार थे। रिटर महोदय इतिहासकार ही नहीं वरन् एक उच्च कोटि के भूगोलशास्त्री भी थे। उनका कथन है—"पृथ्वी और मनुष्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरा अपने समस्त विभागों का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। अतएव इन दो का सम्बन्ध अविभेद्य है। पृथ्वी मनुष्य पर प्रभाव डालती है और मनुष्य पृथ्वी पर।"

इस विषय पर रिटर महोदय ने इतना अधिक लिखा है, कि कभी-कभी वास्तविकता का लोप हो जाता है। इनकी कृतियों से स्पष्ट होता है कि मनुष्य समस्त भूगोल का केन्द्र है। उनकी लेखन-शैली में एक विचित्र गति है। उनके मतानुसार भूगोल में भूतल का केवल वर्णन मात्र और प्राकृतिक भागों में विभाजन ही नहीं करना चाहिए, अपितु उसमें भौगोलिक तत्वों के मूल कारणों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए; और तुलनात्मक रीति से कारण-तत्व सम्बन्धों को ढूँढना चाहिए। उन्होंने भूगोल विषय को एक ऐसी विचारधारा प्रदान की है, जो अब भी अकाट्य है। वे हम्बोल्ट महोदय के वनस्पति सम्बन्धी कार्यों से अधिक प्रभावित हुए, और उन्होंने भूगोल को क्रमबद्ध रूप प्रदान किया।

पहिले की अपेक्षा पश्चात् के जीवन में रिटर और हम्बोल्ट महोदय एक दूसरे के घनिष्ट मित्र हो गये थे। एक ही व्यवसाय में संलग्न होने के फलस्वरूप उन्हें इस क्षेत्र में कार्य करने की जो प्रेरणा प्राप्त हुई उसके लिए वे दोनों एक दूसरे के कृतज्ञ हैं।

रिटर महोदय की प्रकृति की एकता वाली विचारधारा से हम्बोल्ट महाशय सहमत थे और उन्होंने रिटर महोदय की इस बात को भी स्वीकार किया कि इस विचारधारा की पुष्टि भौतिक भूगोल के द्वारा होती है। हम्बोल्ट ने तुलनात्मक प्रणाली को रिटर महोदय की अपेक्षा अधिक स्पष्ट किया जिसके फलस्वरूप रिटर महोदय हम्बोल्ट महाशय के कृतज्ञ हो गए। यद्यपि ये दोनों लेखक अनेक स्थलों पर सहमत हैं किन्तु प्रकृति के प्रति उनकी दार्शनिक विचारधाराएँ भिन्न हैं। हम्बोल्ट महोदय भूगोल के क्रमबद्ध अध्ययन के पक्ष में थे जब कि रिटर महोदय प्रादेशिक प्रणाली के। यदि हम इन दोनों आचार्यों के भूगोल अध्ययन-प्रणालियों को समन्वित करें तो हमें वर्तमान भूगोल के अध्ययन के लिए एक नयी प्रणाली प्राप्त होती है जिसके लिए आधुनिक पीढ़ी कृतज्ञ है।

फ्रेडरिक रेटजल (Friedrich Ratzel)

रेटजल महोदय को मानव-भूगोल के संस्थापक होने का गौरव प्राप्त है। उनकी Anthropo-Geographie नामक पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १८८२ ई० में प्रकाशित हुआ और द्वितीय संस्करण सन् १८९१ ई० में। जब प्रथम संस्करण का सन् १८९९ ई० में द्वितीय बार प्रकाशन हुआ तो उसे विशद एवं सुगठित रूप दिया गया। यद्यपि ग्रीक इतिहासकारों, एवं दार्शनिकों ने मानव-वितरण के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण किये हैं परन्तु इनके पृथक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री न प्रस्तुत कर सके। रेटजल महोदय ने Anthropo-Geographie के क्षेत्र में जो कार्य किये हैं वे मानव भूगोल के लिए वरदान सिद्ध हुए हैं। रेटजल ने मानव एवं प्रकृति के सम्बन्धों के अध्ययन-हेतु एक वैज्ञानिक क्रमबद्ध आधार प्रस्तुत किया। रिटर ने अपनी Erdkunde नामक पुस्तक में तुलनात्मक भूगोल के प्रकरण का समावेश किया है और रेटजल महोदय ने उसी का अनुसरण किया है। उसने पृथ्वी सम्बन्धी एकता (Terrestrial Unity) के सत्य को अनुभव किया और मानव कार्यों का निरीक्षण अर्थशास्त्री, इतिहासकार या दार्शनिक के दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु एक भूगोलवेत्ता के दृष्टिकोण से भी। उसने अपने निम्नलिखित शब्दों में ही अपने जीवन के कार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया है—"I travelled, I sketched, I described. I was thus led to *Natur schilderung*." उसकी अभिरुचि विस्तृत एवं अध्ययन गहन था।

महाशय रेटजल ने १८९७ ई० में Politische Geographie नामक दूसरे

बृहद ग्रन्थ का प्रकाशन किया। उन्होंने और उनके शिष्यों ने मानवता और मानव को भौगोलिक तथ्यों का रूप दिया। उनके कथनानुसार मानव को जीवित रहने, पोषित एवं विकसित होने के लिए एक निश्चित भू-भाग की आवश्यकता होती है। यद्यपि सम्पूर्ण विश्व-इतिहास भूगोल द्वारा नहीं वर्णित किया जा सकता परन्तु इतिहास के विकास में मानव जो कि उसका अभिनेता है, अपने भरण-पोषण के लिए पृथ्वी से प्राप्त पदार्थों का उपभोग करता है। मानव क्रियाओं के अध्ययन के आधार पर ही हम शान्तिमय आर्थिक जीवन एवं युद्ध का अध्ययन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त हम राजमार्गों, नहरों, गृहों, नगरों एवं बोये हुए खेतों में मानव क्रियाओं को मूर्तिमान पाते हैं। रिटर महोदय के अनुसार मनुष्य ईश्वरीय कार्यों को सम्पन्न करने के लिए ही इस भूतल पर उत्पन्न हुआ है, जब कि रेटजल महोदय मानव को वातावरण की उत्पत्ति समझते हैं, और उसे अपने को प्रकृति के अनुकूल बनाते हुए देखते हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि मानव-भूगोल का गम्भीर एवं सारगर्भित अध्ययन करने के लिए भौतिक भूगोल को आधार बनाना चाहिए। उनके अधिकांश कार्यों में नियतिवादी (Deterministic) तत्व झलकता है।

रेटजल महोदय ने मानव और भौतिक वातावरण के उलझे एवं विभिन्न सम्बन्धों का निरीक्षण किया—स्थिति, प्राकृतिक दशा, जलवायु, वनस्पति एवं पशुओं आदि के सम्बन्ध उनके निरीक्षण के विषय थे। उन्होंने भूतल पर मानव-वितरण, उसके रहन-सहन, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्रियाओं का अध्ययन किया। आपने मानव कार्यों का अन्वेषण एक सच्चे प्रकृतिशास्त्री के दृष्टिकोण से किया। रेटजल महोदय के वैज्ञानिक कार्यों का क्षेत्र विस्तृत था। उन्होंने भूगोल की समस्त शाखाओं पर प्रकाश डाला।

भूगोल के क्षेत्र में रेटजल महोदय की सेवाएँ महान् थीं, तथा उनके एन्थ्रोपोज्योग्राफी नामक शब्द ने क्रमबद्ध अध्ययन के लिए एक नवीन प्रणाली को जन्म दिया। वास्तव में आप इस विचारधारा के जनक थे। ब्रन्श और कुमारी सेम्पिल उनकी इस विचारधारा से सहमत हैं। रेटजल महोदय के भूगोल क्षेत्र के कार्यों पर चाहे जो भी कहा जाय परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा, कि उन्होंने भौतिक भूगोल की प्रधानता देने वाली प्रवृत्ति का सुधार करते हुए मानव भूगोल एवं भौतिक भूगोल के मध्य में एक सन्तुलित दृष्टिकोण का प्रतिस्थापन किया। रेटजल महोदय तथा उनके शिष्यों, विशेषकर सेम्पिल महोदया ने एक नवीन मनोरंजकधारा उत्पन्न की।

उस समय भूगोल की यह परिभाषा दी गई कि यह मानव और उसके वातावरण के सम्बन्धों का अध्ययन है। आपने मानव को मुख्य स्थान देकर भूमि की दासता से मुक्त किया। प्राकृतिक तथ्यों का निरीक्षण एवं व्याख्या करना कठिन है। परन्तु मानव भूगोल के तथ्यों का निरीक्षण एवं विश्लेषण करना उससे भी कठिन है। मानव भूगोलशास्त्री के लिए इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र एवं इथनोग्राफी का गंभीर अध्ययन आवश्यक है। रेटजल महोदय इन विषयों के पंडित थे।

यद्यपि रेटजल महोदय ने अपनी पुस्तकों में रिटर महोदय को बार-बार उद्धृत किया है, तिस पर भी हम भूगोल शास्त्र में आपके द्वारा दी गई नूतन विचारधाराओं को भूल नहीं सकते। रिटर और हम्बोल्ट के अतिरिक्त जे० आर० फार्स्टर (J. R. Forster), जे० जी० फार्स्टर (J. G. Forster), तथा इमान्युअल कान्ट (Emmanuel Kant) आदि भूगोलवेत्ताओं ने उसे तथा उसके कार्यों को प्रभावित किया। आपके समकालीन लेखकों में फ्रोबेल (Frobel), पिशल (Peschel), बैरन वान रिचथाफन (Baron Von Richthofen), थियोबाल्ड फिशर (Theobald Fisher) एवं मार्थ (Marthe) आदि भी प्रशंसा के पात्र हैं। परन्तु वे प्रकृति-सत्ता में विश्वास करते थे।

खण्ड ३

बीसवीं शताब्दी में मानव भूगोल का विकास

आज तक के निरीक्षण से यह स्पष्ट होता है, कि रेटजल महोदय ने आगे आने वाली पीढ़ी के लिए एक आधार प्रस्तुत कर दिया है। फ्रांसीसी, अंग्रेजी, जरमन और अमेरिकन भूगोलशास्त्रियों ने मानव भूगोल के अध्ययन और विकास में अत्यधिक योग प्रदान किया है।

फ्रेंच भूगोलशास्त्रियों ने भूगोल का विकास अस्तित्व के रूप में किया। इन भूगोलवेत्ताओं ने मानव भूगोल का सन्दिग्ध उपविभाजन नहीं किया। इस सम्बन्ध में वाइडल डी ला ब्लाश (Vidal de la Blache) का कार्य महत्वपूर्ण है। वास्तव में नवीन भूगोल का शिलान्यास १८९८ ई० में होता है जब कि पाल वाइडल डी ला ब्लाश ने सार्बोनी (पेरिस) में भूगोल विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। आगे आने वाले २० वर्षों में अपनी मृत्यु (१९१८ ई०) तक ब्लाश महोदय ने लेखों और शिक्षाओं के द्वारा फ्रेंच भूगोल में पर्याप्त सुधार किया। आपकी Tableau de la Geographie de la France एवं आपके शिष्यों के लेख

प्रादेशिक भूगोल में उच्च कोटि के साहित्य हैं। प्रादेशिक मानव एवं भौतिक भूगोल केविकास में ब्लाश (Blache), गैलोइस (Gallois), ब्रुन्श (Brunhes), डेमान्ज्यन (Demangeon), डी मार्टोन (De Martonne), ब्लाशार्ड (Blauchard), बालिग Baulig), सीगफ्रीड (Seigfried), शोले (Cholley), सोरे (Sorre) एवं बहुतों ने महत्वपूर्ण योग दिया है। प्रादेशिक एवं मानव-भूगोल में फ्रांसीसी मतावलम्बी भूगोल-आचार्यों ने पर्याप्त कार्य किया है जिसके लिए हम उनके अत्यधिक ऋणी है।

ब्लाश महोदय की Principles de Geographie Humaine जोकि उनकी मृत्यु के बाद १६२२ में इमैन्युआल डी मार्टोन के प्रयास से प्रकाशित हुई, ख्यातिप्राप्त भूगोलशास्त्रियों द्वारा उच्चकोटि का साहित्व समझी जाती है। यह निःसंदेह सुन्दर एवं समृद्धिशाली विचारों से परिपूर्ण एक उद्भट आचार्य की कृति है। ब्लाश महोदय भूगोल के भूत एवं भविष्य के विषयों का निरीक्षण साथ-साथ करते हैं। आप केवल इतिहास को ही इंगित नहीं करते वरन् प्रागैतिहासिक काल के वेषय पर भी विचार करते हैं।

महाशय ब्लाश के शिष्य ब्रुन्श महोदय मानव भूगोल के ख्यातिप्राप्त वेद्वान् थे। आपने अपनी Geographie Humaine नामक पुस्तक को १६१० ई० में प्रकाशित किया। यह पुस्तक १६२० ई० में अमरीका में मानव भूगोल के नाम से प्रकाशित हुई। श्री आई० सी० लिकम्पटे (I. C. Lecompte) ने इसका अँग्रेजी अनुवाद किया। इस पुस्तक ने फ्रांस में मानव भूगोल की विषय-सामग्री में बहुत कुछ योग दिया और इसे फ्रांस तथा वाह्य देशों में अधिक सफलता प्राप्त हुई। मानव के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में भौगोलिक प्रभाव भी भिन्न होता है। इस तथ्य का आदर्श अध्ययन इस पुस्तक में अब भी होता है। इस ग्रन्थ ने फ्रांस के कालेज डी फ्रांस (College de France) में ब्रुन्श महोदय को मानव भूगोल में एक प्रमुख स्थान प्रदान किया। ब्रुन्श महोदय इतिहास, प्रकृति विज्ञानों एवं मानव भूगोल के प्रकाण्ड पण्डित थे। फलस्वरूप आपने एक ओर तो भौतिक अंगों का और दूसरी ओर आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक अंगों का मानव समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका अनुमान किया। आपका देहावसान १६३० में हुआ।

डिमान्जियन (Demangeon) फ्रांस का दूसरा प्रसिद्ध भूगोल-शास्त्री हुआ। जो अपने जीवन के अन्तिम क्षणों (१६४०) में इस क्षेत्र में अधिक ख्याति प्राप्त

की। सन् १९४२ ई० में डिमान्जियन द्वारा लिखित Problems de Geographie Humaine नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें मानव भूगोल का एक नया दर्शन दृष्टिगोचर होता है। आपने नियतिवाद (Determinism) का समर्थन नहीं किया। ब्रुन्श महोदय के सहयोगी पी० डिफनटेन्स (P. Deffontaines) इस मानव भूगोल को एक नया विषय मानते हैं; और यह विषय अन्वेषण-अवस्था में होने के फल-स्वरूप उदाहरण ढंग से संचालित होता है। मानव भूगोल के अध्ययन का प्रथम अंग मनुष्य और वातावरण के बीच में संघर्ष है; और दूसरा अंग इस संघर्ष से प्राप्त अनुभवों का विश्लेषण तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की मानव श्रेणियों के विभाजन का अध्ययन करता है।

वर्तमान शताब्दी में इंगलैंड ने भी मानव भूगोल का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया है। Habitat Economy and Society के लेखक श्री सी० डी० फोर्ड (C. D. Forde) का प्रयास प्रशंसनीय है। उन्होंने इंगलैंड में एक नयी विचारधारा उत्पन्न की और मानव भूगोल को समस्त समाज विज्ञानों में एक गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया। आपका विश्वास है कि मानवता एवं भूगोल का ज्ञान मानव भूगोल के अध्ययन के लिए अत्यावश्यक है। फ्लुयर (Fleure) महोदय इस आदर्शवादिता में तल्लीन थे कि मनुष्य और उसके वातावरण के सम्बन्ध ही उसे सदैव आदर्शवादी बनाते हैं। इसके फलस्वरूप आपने इस बात का अनुभव किया, कि यह संसार स्पष्टीकरण (Expression) का क्षेत्र है, परन्तु इस क्षेत्र में मानवशक्ति का सामूहिक स्पष्टीकरण ही महत्वपूर्ण होगा। आपने भूतल पर मानव प्रयासों को मुद्रित देखा और इसी आधार पर मानव प्रदेशों का विभाजन किया जहाँ पर भिन्न-भिन्न लोग अपनी-अपनी विशेषताओं का प्रदर्शन करते हैं। दूसरे अंग्रेज लेखक हैं जे० एच० जी० लेबन (J. H. G. Labon) हैं जिनके अनुसार प्रादेशिक भूगोल सूक्ष्म भूगोल (Micro Geography) का तत्व है एवं मानव भूगोल सामान्य भूगोल है।

बीसवीं शताब्दी में अमरीकन भूगोल शास्त्रियों ने मानव भूगोल में विशेष योग दिया। कुमारी एलेन सेम्पिल, रेटजेल महोदय के विचारधारा की सच्ची पोषिका थीं और आपने अपनी पुस्तक Influences of Geographic Environment में नियतिवाद (Environmentalism) का समर्थन किया। आपके विचारानुसार प्रकृति की आन्तरिक शक्ति Anthropo-Geography द्वारा संचलित होती है परन्तु उनके अनुसार भौगोलिक नियन्त्रण सुचारु रूप से होना चाहिए। एल्सवर्थ हंटि-

बटन Principles of Human Geography और The Climate and Civilisation पुस्तकों के लेखक हैं। इन्होंने अपने को मानव भूगोल के लेखक के रूप में प्रस्तुत किया है। आपने विषय को एक नई प्रेरणा प्रदान की है जो फ्रान्सीसी विचारधारा से प्रथक है। आपने इसे इतना महत्व दिया कि यह मानव-उन्नति का अन्तिम लक्ष्य बन गई।

मानव भूगोल अभी अपने शैशवावस्था में है। अतएव आधुनिक लेखकों के सारगर्भित व्याख्याओं पर प्रकाश डालना दुष्कर है। कुछ आधुनिक लेखकों ने विषय की निर्धारित सीमा को लाँघ जाने का साहस किया है और वे मानव भूगोल के अन्तर्गत नाना प्रकार के मानवीय कार्यों को सम्मिलित करने के आदी हो गये हैं यहाँ तक कि इनमें से कुछ गलत दिशा की ओर पग बढ़ा रहे हैं।

उपर्युक्त आँकड़ों पर विचार करने से हमें यह विदित हो जाता है कि संसार तीन ही ऐसे प्रमुख क्षेत्र हैं जहाँ जनसंख्या सबसे अधिक है:—

(१) दक्षिणी-पूर्वी एशिया
(२) उत्तरी-पश्चिमी यूरोप तथा
(३) उत्तरी-पूर्वी उत्तरी अमरीका ।

भारत तथा जावा को छोड़कर ये सभी घनी जनसंख्या वाले प्रदेश उत्तरी गोलार्द्ध के समशीतोष्ण में स्थित हैं । इस प्रदेश में जनसंख्या की उत्तरी सीमा ग्रीष्म ऋतु का न्यून तापक्रम ही निर्धारित करती है क्योंकि यह तापक्रम ही उगने, बढ़ने तथा पकने की अवधि निश्चित करता है । दक्षिण तथा प्रायद्वीपों के अन्तस्तल में आर्द्रता अपना वशीकरण प्रभाव प्रकट करती है

जनसंख्या के इन तीन केंद्रों में बहुत से अन्तर हैं । जैसे अमरीकी केन्द्र का उत्थान यूरोपीय आवास के कारण हुआ, फलतः उस पर यूरोपीय संस्कृति की छाप है । वाणिज्य तथा व्यापार, वैज्ञानिक कृषि तथा औद्योगिक उन्नति उसके प्रमुख लक्षण हैं । यह क्षेत्र औद्योगिक क्रान्ति के प्रतीक स्वरूप हैं । यहाँ व्यक्तिगत पूँजी अधिक है: रहन-सहन का स्तर ऊँचा है; क्षेत्रीय विशिष्टीकरण चरम सीमा पर पहुँच चुका है

इसके विपरीत दक्षिणी-पूर्वी एशिया में अर्द्ध नंगे, अर्द्ध भूखे कृषक दयनीय यातनाओं को झेल रहे हैं । जनसंख्या का खाद्य सामग्री पर असह्य भार है; निर्धनता का एकछत्र राज्य है । दैनिक, दैनिक और भौतिक व्याधियों का प्रकोप है । रहन-सहन तथा खान-पान का स्तर निम्न कोटि का है । औद्योगिक क्रान्ति का युग अब भी दूर है । वाणिज्य तथा व्यापार की यथोचित उन्नति नहीं हो पाई है । इस प्रदेश में द्वितीय महायुद्ध के पूर्व का एक अपवाद गिना जाता है । आज भारत तथा चीन भी औद्यौगिक क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हैं । हर देश ने अपनी राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा उसे कायम रखने का निश्चय कर लिया है ।

न्यून जनसंख्या वाले देश—उपयुक्त घनी जनसंख्या वाले प्रदेशों के विपरीत बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ जनसंख्या बहुत-कम है । ये क्षेत्र पृथ्वी के लगभग आधे भाग को आच्छादित किये हुए हैं । साधारणतया इनका भौतिक वातावरण मनुष्य के प्रतिकूल है । यदि हम संसार की जनसंख्या तथा जलवायु के मानचित्रों की तुलना करें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये क्षेत्र मुख्यतः तीन प्रकार की जलवायु वाले प्रदेशों में फैले हुए हैं:—

(१) ध्रुव प्रदेश—जहाँ शीत का निरन्तर साम्राज्य है। उत्तरी साइवेरिया, उत्तरी नार्वे, ग्रीनलैंड, उत्तरी कनाडा तथा अन्टारकटिका इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

(२) मरुस्थल—जहाँ जल की निर्दयता भीषण शुष्कता का कारण बनी हुई है, जैसे अफ्रीका में सहारा तथा कालाहारी, एशिया में अरब, तुर्किस्तान तथा मंगोलिया, अस्ट्रेलिया का मरुस्थल, उत्तरी अमरीका का ग्रेट बेसिन तथा दक्षिणी अमरीका के अटाकामा तथा पैटेगोनिया मरुस्थल। यह प्रदेश संसार का चौथाई भाग घेरे हुए हैं।

(३) भूमध्य रेखीय वन प्रदेश जहाँ तापक्रम और वर्षा दोनों मिलकर निरन्तर वनस्पति को प्रोत्साहित करते रहते हैं साथ ही नाना प्रकार के कीड़े-मकोड़ों को जन्म देते रहते हैं। एक ओर वनस्पति की तीव्र वृद्धि खेतिहर प्रदेश पर आक्रमण करती है तथा आवागमन के मार्गों को कंटकाकीर्ण बना देती है तो दूसरी ओर जलवायु की दशाएँ स्वास्थ्य के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

जनसंख्या के विश्व-वितरण के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनसंख्या का वितरण कितना असमान है। कुछ प्रदेश तो ऐसे हैं जहाँ मनुष्य बहुत कम हैं या यों कहिये नहीं के बराबर हैं। इसके विपरीत कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहाँ जनसंख्या मधुमक्खी के छत्ते की भाँति घनीभूत है। हम इस विश्ववितरण का और विश्लेषण करते हैं तो घनी संख्या वाले प्रदेश स्वयं ऐसी असमानताएँ प्रस्तुत करते हैं कि हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम जनसंख्या का अध्ययन महाद्वीपीय आधार पर करें।

एशिया—आइए, सर्वप्रथम अपने महाद्वीप की ही जनसंख्या का अध्ययन करें जनसंख्या के मानचित्र पर दृष्टि डालते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इस महाद्वीप में थोड़े से ही ऐसे भाग हैं जहाँ मनुष्य अधिक हैं परन्तु बहुत से ऐसे भाग हैं जहाँ मनुष्य बहुत कम हैं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया जहाँ लगभग आधी मानवता शरण ले रही है, स्वयं असमानता के वैचित्र्य प्रस्तुत करता है। यहाँ जनसंख्या घनी तथा बिखरी दोनों प्रकार की है। घनी जनसंख्या तथा बिखरी जनसंख्या के पड़ोसी क्षेत्रों के बीच में गहरी खाइयाँ हैं। इन विभिन्नताओं का श्रेय विशेष रूप से भूपटल तथा मिट्टी को प्राप्त है। क्योंकि साधारणतया दक्षिणी-पूर्वी एशिया एक पहाड़ी प्रदेश है। जहाँ नदियों से लाई हुई मिट्टी से बने हुए निचले मैदान सीमित हैं प्रदेश की अधिक वर्षा ऊँचे भागों की उपजाऊ मिट्टी को बहा ले जाती है और उन्हें सर्वथा खेती के अयोग्य बना देती है। किसान लोग नदियों की

योजना (Family Planning) समय की पुकार है। आज जब मृत्यु-दर (Death rate) अधिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं के होते हुए भी बढ़ रही है तो उस दिशा में यह आवश्यक है कि प्रजनन-दर को भी कम किया जाय। आज वास्तव में सहस्रों पृथ्वी को मोटा करने के लिए पैदा होते हैं जिन्हें वह (पृथ्वी) मोटा करने में असमर्थ है। इसका परिणाम अत्यन्त दुःखदायी होता है। गरीबी जनसंख्या को बढ़ाती है और इस प्रकार एक क्रूर चक्र का आविर्भाव होता है जिसका अन्त 'बर्थ कन्ट्रोल' (Birth Control) ही कर सकता है। यह नियन्त्रण ही अन्ततोगत्वा रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठायेंगे और जनसंख्या की गरजती हुई तूफानी धारा को संयत करेंगे।

वैवाहिक जीवन में सयम को जितना महत्व दिया जाय, ठीक है; परन्तु इसका योगफल अधिक आशातीत नहीं दीखता क्योंकि संयम क्रियात्मक रूप में अत्यन्त कठिन है। इस कारण से Contraceptives का प्रयोग वांछनीय है। हो सकता है कि शुरू में इसका परिणाम सामाजिक दृष्टिकोण से बुरा हो, परन्तु बच्चों की 'तूफानी धारा' का प्रवाह तो निश्चय ही कम पड़ जायेगा। प्रो० ज्ञानचन्द जी ने भारतवर्ष की प्रजनन-दर को नियन्त्रित करने के सम्बन्ध में इन कन्ट्रासेप्टिव्ज का प्रयोग वांछनीय कहा है। उनके मतानुसार तो सरकार को चाहिए कि वह ऐसे केन्द्र स्थापित करे जहाँ इनके बारे में उचित परामर्श प्राप्त हो सके।

प्रजनन दर को कम करने के लिए विवाह देर से करना चाहिए क्योंकि जितनी में नवयुवक वैवाहिक जीवन में प्रविष्ट होते हैं, उतने ही कम बच्चे होते हैं।

(४) शिक्षा—अशिक्षा महान् अभिशाप है। अशिक्षित दम्पति के रूढ़िवादी मूल्यों का खण्डन अनिवार्य है। शिक्षा मानव जीवन के मूल्यों को बदल देती है। एक शिक्षित समुदाय ही जनसंख्या की वृद्धि की समस्या को समझ सकता है और उसके नियन्त्रण की बात पर विचार कर सकता है। शिक्षित परिवारों में बच्चों की बाढ़ स्वतः खत्म हो जाती है। जीवन-स्तर ऊँचा उठता है और बच्चों की संख्या बढ़ाने की अभिलाषा नहीं रह जाती है, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश में शिक्षा का अधिकतम प्रसार किया जाय जिससे भावी पीढ़ियाँ स्वयं अपने लिए समस्या

अध्याय ६

मकान तथा बस्तियाँ

Houses and Settlements)

गृह का महत्व—प्रत्येक प्राणी के लिए भोजन तथा शरण (shelter) सर्वोपरि हैं। इन्हीं को खोज तथा पूर्ति उसके जीवन का दैनिक कार्यक्रम बनाते हैं। चूँकि कोई भी प्राणी नींद पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता, अतः प्रत्येक बाध्य होकर शरण की खोज करता है। सायंकाल पक्षी अपने घोंसलों की ओर उड़ते दिखाई पड़ते हैं; चौपाये अपने स्थान की ओर द्रुतगति से बढ़ते दीखते हैं। मनुष्य इस माने में कोई अपवाद नहीं है। उसे भी नींद प्रेरित तथा बाध्य करती है और इस प्रकार 'गृह' को उसके जीवन का सर्वोत्कृष्ट केन्द्र बना देती है। फलस्वरूप 'गृह' मानव भूगोल का एक सार्वभौमिक तथा सर्वकालीन अव्यय का रूप ग्रहण कर लेता है। परन्तु इसकी अवस्था मानव जीवन की भाँति ही क्षणभंगुर है। उस नगर में भी जहाँ मनुष्य ने अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने का सफल प्रयास किया है, इने-गिने ही मकान निकलेंगे जो ५०० वर्ष पुराने कहे जा सकते हैं। साधारणतया पौधों के परिवर्तन के साथ ही घर के रूप में भी परिवर्तन स्वाभाविक सा दीख पड़ता है। परन्तु परम्परा तथा भौतिक वातावरण उसकी स्मृति को विलीन होने से बचाते रहते हैं।

वास्तव में मानव-निवास स्थान का इतिहास मानव के सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास से ओत-प्रोत है। यह आँधी तथा मौसम से रक्षा करता हुआ एक परिवार के लिए आश्रय के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जब यह चरवाहों को शरण (shelter) के रूप में स्थायी निवास स्थान का रूप धारण करता है, तो रहने का स्थान ही दुकान भी बन जाता है, परन्तु औद्योगीकरण के तीव्र चरणों के साथ घर तथा दूकान फिर पृथक हो जाते हैं। साथ ही तत्कालीन सामाजिक अन्तर निर्धनों तथा धनिकों के घरों में विभिन्नता पैदा कर देते हैं। इतिहास के पन्ने उलटिये और मनुष्य को खोहों और गुफाओं में ढूँढ़िये। उस युग में भी दो प्रकार के अन्तर स्पष्ट हो जाते हैं—छोटी गुफा जिसमें एकाकी परिवार रहता था और बड़ी गुफा जिसमें कई परिवार मिलकर रहते थे। आदि निवासियों के लिए 'घर' का अर्थ निवास स्थान तक ही

भूमि-विन्यास के अतिरिक्त, पानी का अभाव, दलदल, वन, पथरीली भूमि तथा अन्य अनोपजाऊ भूमि के प्रभाव भी प्रविकीर्ण प्रवृत्ति को प्रेरणा देते हैं। उदाहरण के लिए, पोलैण्ड में अनोपजाऊ भूमि, दलदल तथा Clunes को पुरानी प्रविकीर्ण आबादी का स्थल माना जाता है। जर्मनी तथा फिनलैण्ड में अन्नोपजाऊ भूमि तथा प्रविकीर्ण प्रवृत्ति का सम्बन्ध स्पष्ट दीखता है। फ्लैण्डर्स में पृथ्वी के पानी के बाहुल्य के कारण ही प्रविकीर्ण प्रवृत्ति विकसित हो पायी है।

(२) **सांस्कृतिक आधार**—अमुक देश की आर्थिक प्रणाली तथा उसका इतिहास भी प्रविकीर्ण प्रवृत्ति को निर्धारित करते हैं। आज भी यूरोप जैसे महाद्वीप में जहाँ चरवाहे (Pastoralists) हैं और जनसंख्या का स्थानान्तरण (Transhumence) निरन्तर होता रहता है, प्रविकीर्ण प्रवृत्ति विद्यमान है। वेल्स, यार्कशायर के घास के पठारों, स्वैट्जलैण्ड, आस्ट्रिया तथा नार्वे में प्रविकीर्ण बस्तियों के सहस्रों उदाहरण मिलते हैं।

जिस समय जनसाधारण का धन तथा जीवन दोनों खतरे में थे, ग्रामों में एकत्रित होकर एक संगठिक जीवनयापन अनिवार्य था। परन्तु जब इन खतरों का भय मिट गया और यथासम्भव सुरक्षा सुलभ हो गयी, तो प्रविकीर्ण प्रवृत्ति को प्रगति मिली। व्यक्तिगत साहस ने इसे और प्रोत्साहित किया। औद्योगिक क्रान्ति ने आवागमन की सुविधाएँ उपलब्ध कर दीं। खेती का स्तर भरण-पोषण-स्थल से वाणिज्य स्थल पर पहुँच गया। फलतः प्रविकीर्ण प्रवृत्ति जागृत हो उठी। जनसंख्या की वृद्धि ने इसके आधार को और विस्तृत कर दिया। इस प्रकार यूरोप में डैन्यूब की घाटी में जहाँ किसी समय संगठित ग्रामीण जीवन क्षेत्र की प्रमुख विशेषता थी, आज प्रकीर्ण प्रवृत्ति स्पष्ट है। बल्कान प्रायद्वीप यूरोप में अद्वितीय उदाहरण है जहाँ प्रविकीर्ण आबादी समस्त क्षेत्र पर आच्छादित है। सरबिया तथा बलगेरिया भी इसके अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

घनी बस्तियाँ

(Agglomerated or Compact Settlements)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि घनी बस्तियों के अन्तर्गत पुरवा से लेकर नगर तक सम्मिलित किये जाते हैं। जैसे ही मकानों का एक स्थान पर केन्द्रीकरण होता है, वैसे ही गलियों का अभ्युदय हो जाता है, न केवल गलियाँ अपितु सड़कें भी जो अमुक केन्द्रों को दूसरे केन्द्रों से मिलाती हैं, जन्म देती हैं। ये गलियाँ तथा

सड़कें अमुक नगर की रक्तवाहिनी नाड़ियाँ बन जाती हैं और उसके शरीर की पुष्टि तथा वृद्धि करती हैं।

घनी बस्तियों के विभाग—कार्य (Function) के आधार पर घनी बस्तियों को दो प्रमुख विभागों में बाँट सकते हैं:—

(१) ग्रामीण बस्तियाँ—जिनका एकमात्र आधार खेती है। इसके अन्तर्गत हम ऐसे ग्रामों तथा पुरवों का अध्ययन करते हैं जहाँ के निवासी मुख्यतः किसान हैं और जिनका भूमि से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। ऐसी आबादी का मुख्य व्यवसाय खेतिहर वस्तुओं का उत्पादन है।

(२) नागरिक बस्तियाँ—जिनका आधार खेती नहीं है। Auroussean के अनुसार "The inhabitants of cities have no immediate interest in the production of the materials for their food or clothing but are engaged in transporting, manufacturing, buying and selling these materials or in educating the people or in managing the affairs of the state or merely 'living' in town." साधारणतः नगर घने बसे होते हैं, अतः वहाँ जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक होता है। न्यूयार्क की गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ जिन में ७०-८० मंजिलें होती हैं और प्रत्येक अट्टालिका में १०-१५ हजार व्यक्ति रहते हैं, जनसंख्या का अद्वितीय घनत्व प्रस्तुत करती हैं। चूँकि नागरिक बस्तियों का आधार खेती की अपेक्षा अन्य व्यवसाय ही हैं, अतः इसके अन्तर्गत पुरवा ग्राम, कस्बा तथा नगर आ जाते हैं।

ग्रामीण एकत्र आबादी

'ग्रामीण' ग्राम (Rural village) बड़े-बड़े खेतिहर मैदानों की विशेषता है। इन ग्रामों में मुख्यतः किसान रहते हैं। बढ़ई, लोहार, नाई, जुलाहा तथा अन्य पेशे वाले भी रहते हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम होती है। इस प्रकार फिंच तथा ट्रिवार्था के शब्दों में "The rural village is principally a place of residence and not primarily a business centre" गाँव में मुख्यतः किसानों के रहने के मकान तथा उनसे सम्बन्धित बैठकें तथा बाड़े आदि होते हैं।

यों तो ग्रामीण जीवन का अभ्युदय नवीन पाषाण युग में हुआ था, परन्तु इसका वास्तविक विकास खेती की प्रगति के साथ-साथ हुआ। वास्तव में प्रारम्भिक अवस्था में ग्राम स्थायी न होते थे क्योंकि स्वयं खेती अस्थायी (Shifting) थी।

नागरिक जीवन की अभिरुचि भी महत्वपूर्ण है। नगर की अन्यान्य सुविधाएँ इन्हें आकर्षित करती हैं और ये नगरों के ही रहते हैं। गत महायुद्ध के समय श्रम की भारी माँग ने बड़े-बड़े नगरों में जनसंख्या की बाढ़ ला दी। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली तथा कानपुर की जनसंख्या में अपूर्व वृद्धि हुई।

जनसंख्या (लाखों में)

नगर	१६३१	१६४१	१६५१
(१) कलकत्ता	१३.६	२४.६	२६.६
(२) बम्बई	११.६	१४.६	२८.४
(३) दिल्ली	३.८	५.२	१७.४
(४) कानपुर	२.४	४.६	७.०

नागरिक समस्याएँ —

नगरों के विकास के साथ उन्हें अनेकों ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनकी कभी उन्हें पहले चिन्ता तक न थी। उदाहरण के लिए जब एक कस्बा बड़े नगर के रूप में विकसित होता है तो वहाँ की नगरपालिका को जल की पूर्ति का प्रबन्ध करना पड़ता है। यह नगरपालिका की जिम्मेदारी हो जाती है कि वह नगर की सफाई का उचित प्रबन्ध करे। जहाँ जनसंख्या का केन्द्रीकरण होने लगता है आवागमन की सुविधाएँ अनिवार्य हो जाती हैं। नगर में सड़कों का जाल बिछ जाता है। यही नहीं बल्कि धरातल के ऊपर खम्भों पर और नीचे सुरंगों में आवागमन के मार्गों का विस्तार किया जाता है। आज न्यूयार्क में, जो आकाश को छूने का प्रयास कर रहा है, गाड़ियाँ लोहे के खम्भों पर दौड़ती हैं; लंदन में सुरंगों में

चित्र २२

बिजली की गाड़ियाँ चलती हैं। वास्तव में बड़े नगरों की कार्यक्षमता बहुत कुछ आने-जाने में नष्ट हो जाती है। बम्बई की मिलों तथा दफ्तरों में काम करने वाले कितने ही लोगों को १०-१५ मील प्रतिदिन की यात्रा इसी चक्कर में करनी पड़ती है। किराया अपेक्षाकृत कम होता है, नहीं तो दिवाला ही निकल जाय। फिर आटो-

मोबाइल के प्रयोग ने एक गम्भीर समस्या पैदा कर दी है, क्योंकि पुराने नगरों में सड़कें, जिनका प्रयोग घोड़ा-गाड़ियों तक ही सीमित था, सकरी थीं, वे भला इन कारों तथा बसों की भीड़ कैसे निभा सकती हैं। फलस्वरूप नगरपालिकाओं को बहुधा सड़कें चौड़ी करने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता है। ये सड़कें बड़ी ही मँहगी पड़ती हैं। क्योंकि एक ओर तो सड़कों के नये निर्माण का भारी खर्च; फिर गिराये गये मकानों का मुआवजा। इस पर भी तुर्रा यह कि कभी तो नई सड़कें इतनी चौड़ी हो ही नहीं पातीं कि वे समस्या को पूरी तरह से हल कर सकें। नगर में प्रकाश की समस्या भी सरल नहीं होती है जहाँ सस्ती बिजली पैदा हो जाती है, वहाँ तो ठीक है वरना दशा शोचनीय होती है।
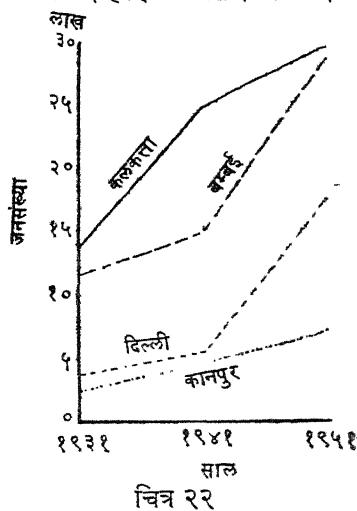
जब कोई नगर एक छोटे से जनसंख्या के केन्द्र से बड़े नगर के रूप में विकसित होता है, तो प्रारम्भिक व्यावसायिक केन्द्र रहने के मकानों के मध्य में घिर जाता है। नगर के आकार में विस्तार के साथ ही स्टोरों का निवास क्षेत्र पर आक्रमण प्रारम्भ हो जाता है और घरों को नगर की बाहरी सीमाओं की ओर भागना पड़ता है। इस प्रकार जैसे-जैसे व्यावसायिक क्षेत्र विकसित होता जाता है, वैसे ही घर तथा होटल आदि व्यावसायिक क्षेत्र को घेरते हुए नगर की सीमाओं का विस्तार करते चले जाते हैं। निवास क्षेत्र के पीछे हटने के साथ ही, गलियों, पानी तथा रोशनी का पूर्ति-क्षेत्र विस्तृत होता जाता है। नगर की इस अवस्था में बहुधा पुराना व्यावसायिक केन्द्र अपना महत्व खो बैठता है। नगर की सीमाओं का विस्तार होता है, परन्तु उसका हृदयस्थल दुर्बल पड़ जाता है। इस हृदय-स्थल को जिसे क्षय रोग ने ग्रसित कर लिया है सुसम्पन्न बनाने की सतत योजनाएँ कार्यान्वित की गई हैं, परन्तु सम्भवतः सभी निष्परिणाम सी रही हैं। यह एक अत्यन्त शोचनीय समस्या है कि नगर का हृदयस्थल छिन्न-भिन्न हो जाय और नगर की सीमाओं के परे बढ़ता जाय। कौन ऐसा विद्वान् होगा जो ऐसे अव्यवस्थित नागरीकरण को वांछनीय कहने में संकोच न करेगा।

नगरों का भविष्य

नगरों के सम्बन्ध में कोई भविष्यवाणी करना असंदिग्ध नहीं है, क्योंकि जिस आधार पर ऐसी भविष्यवाणी की जा सकती है, वह स्वयं अनिश्चित तथा अनुपयुक्त है। फिर भी कुछ सम्भावनाओं की कल्पना मनोरंजन से परिपूर्ण अवश्य है।

संसार के नागरीकरण पर एक विहंगम दृष्टि डालने से कुछ बड़ी महत्वपूर्ण बातें हाथ लगती हैं। एक ओर संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा यूरोप (रूस को छोड़ कर)

अध्याय ७

मनुष्य के व्यवसाय

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन कालीन मनुष्य का उत्थान 'विचारों एवं योजनाओं' में निहित था। उस समय वह केवल प्रकृति प्रदत्त पदार्थों को एकत्र करता था। इस प्रकार समस्त प्राणियों के जीवन निर्वाह की आवश्यकता की पूर्ति होती थी। जीवन निर्वाह के साधन जुटाना जीवन की प्रथम आवश्यकता है और सम्भवतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मनुष्य की सबसे पहली क्रियाएँ जन्तुओं के आखेट से सम्बन्धित थीं जिनसे भोजन के लिये मांस और पहिनने को लिये खालें प्राप्त होती थीं। इसके अतिरिक्त भोजन के लिए समुद्र के किनारे के छिछले पानी और अन्तःप्रदेशी नदियों में मछली पकड़ने की ओर भूखे मनुष्य का ध्यानाकर्षण होना स्वभाविक ही था। इस प्रकार शिकार एवं मत्स्य कर्म भोजन और वस्त्र के लिये मनुष्य की आदि कालीन क्रियाएँ हैं, अतएव इनको हम मनुष्य की आदि-कालीन क्रियाएँ कह सकते हैं। मोटे तौर से आर्थिक क्रियाएँ वे क्रियाएँ हैं जिनसे मनुष्य अपना जीविकोपार्जन करता है और जो उसकी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये साधन ढूँढ़ निकालती हैं। आखेट एवं मत्स्य कर्म मनुष्य की प्राथमिक क्रियाएँ थीं जिनसे साधारणतया प्रकृति प्रदत्त औजारों के अतिरिक्त किसी विशेष हथियार की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। समय की गति के साथ इन साधारण क्रियाओं से शनैःशनैः आधुनिक औद्योगिक संसार की उलझी हुई क्रियाओं का विकास हुआ। आखेट करना और मछली पकड़ना अब भी मनुष्य की आवश्यक क्रियाएँ बनी हुई हैं। परन्तु वे केवल जीवन निर्वाह के साधन नहीं रहीं अब वे मनोविनोद के साथ उच्च कोटि के व्यापार संबंधी औद्योगिक अंग भी हैं। इतना होते हुए भी वे किसी भी आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र के मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अल्पांश ही हैं।

यह हम मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं के विभाजन करने को प्रस्तुत होते हैं तो पहिले ऐसा करना व्यर्थ प्रतीत होता है। फिर भी यदि आधुनिक युग के जन साधारण की क्रियाओं का चित्र खींचा जावे तो एक प्रकार का क्रमबद्ध विभाजन समझ में आ जाता है। गहन विचार एवं अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ अनेक छोटे-छोटे खंडों में विभाजित की जा

सकती हैं जिनके हरएक विभाग में जन साधारण के कुछ हित निहित होते हैं। इसके साथ प्रत्येक विभाग प्रकृति तथा मनुष्य के द्वारा बनाये गए सीमित क्षेत्र से नियंत्रित रहता है। अनेक उद्देश्यों में भूगोल का एक उद्देश्य यह भी है कि वह प्राकृतिक अथवा भौतिक दशाओं एवं आर्थिक क्रियाओं के पारस्परिक संबंध का अध्ययन करे। अब हम यह देखेंगे कि आर्थिक क्रियाओं की प्रधान श्रेणियों में मनुष्य के जीवन की क्या रीतियाँ हैं और इनमें विकास का महत्व एवं परिणाम क्या होता है ? इनको हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं :—

(१) आदि कालीन आखेट एवं मत्स्य कार्य

(२) पशुपालन

(३) कृषि

(४) बन काटना

(५) खान खोदना

(६) कारखाने

(७) यातायात

(८) व्यापार

ये व्यवसाय मनुष्य के जीवन की बढ़ती हुई जटिलता एवं सभ्यता की उन्नति के क्रम से हैं।

चित्र २३
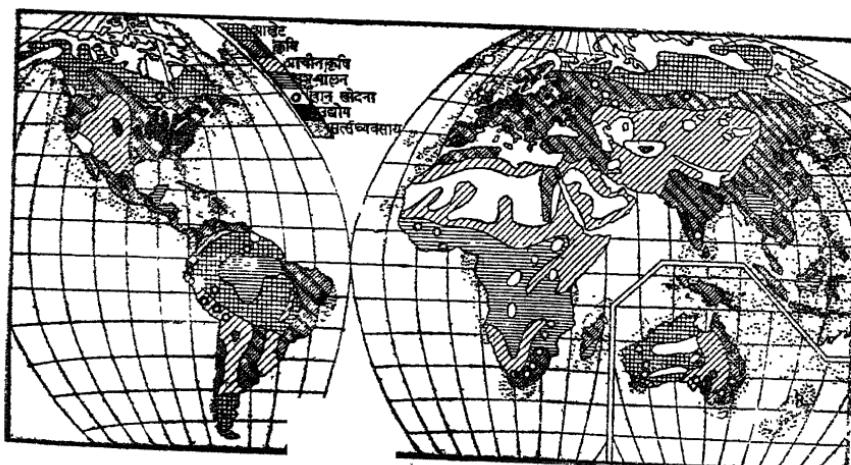
मनुष्य के जीविकोपार्जन के ढंग भौतिक दशाओं द्वारा अवसर एवं मनुष्य के विकास की अवस्था से प्रभावित होते हैं, क्योंकि इनमें से प्रत्येक मनुष्य के व्यवसाय सम्बन्धी रुचि को सीमित करते हैं। इसलिए कुछ भागों में मनुष्यों ने अपने जीवन निर्वाह के जो प्रारम्भिक ढंग अपनाये वे वर्तमान ढंगों से पूर्णतया विभिन्न हैं। यह कुछ अंश में वातावरण-परिवर्तन और उस परिवर्तन से प्राप्त सुअवसर के कारण था परन्तु इसका सबसे बड़ा कारण था मनुष्य में ज्ञान का अभाव जिसके कारण वह प्रकृति प्रदत्त सुअवसरों का उपभोग कर सका और इस प्रकार उसने अपने जीविकोपार्जन के ढंग को सीमित रखा।

खण्ड १

आदिकालीन आखेट एवं मत्स्य कार्य संबंधी व्यवसाय

संसार में प्राचीनतम मनुष्य का भोजन जंगली कन्दमूल फल एवं जंगली जानवरों से ही सुलभ, तथा इन्हीं से वस्त्र, बर्तन, औजार एवं निवास स्थान बनाने के लिए साधन प्राप्त होते थे। इस प्रकार आखेट, मत्स्य कर्म एवं फल आदि एकत्र करना भोजन एवं जीवन की अन्य साधारण एवं आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन थे। तत्पश्चात् यह ज्ञात किया गया कि वन की कुछ घास और फल देने वाली झाड़ियों एवं वृक्षों से बड़ा लाभ उठाया जा सकता है। इससे आदि कालीन खेती-बाड़ी का श्रीगणेश हुआ, जिसने धीरे-धीरे आखेट एवं मछली पकड़ने के व्यवसाय से प्राप्त भोजन के पूरक के रूप में उत्तरोत्तर महत्ता प्राप्त की। अतः सहस्रों वर्ष तक मनुष्य प्रवासित फल आदि एकत्र करने वाला, शिकारी, मछुवाहा और अन्त में तथा छोटे रूप में कृषक रहा।

आज भी कुछ क्षेत्रों के निवासी, जो असभ्य अथवा कम सभ्य हैं, आखेट, मछली पकड़ना तथा प्रारम्भिक प्रकार की कृषि से प्रवासी अथवा अर्ध प्रवासी होकर जीवन निर्वाह करते हैं। ऐसे व्यवसाय वाले मनुष्य विषुवतीय प्रदेश में से लेकर ध्रुवीय प्रदेश तक पाये जाते हैं। परन्तु उनकी संख्या अल्प है और जिन स्थानों में पाये जाते हैं ाँ मनुष्यों का ध्यान ही नहीं जाता अथवा बहुत कम जाता है। लगभग सारे ातिशील देश जीवन निर्वाह के ऐसे असन्तोषप्रद साधनों से मुक्त हो गये हैं।

आधुनिक काल के प्रवासित आखेट एवं मत्स्य कार्य सम्बन्धी व्यवसाय संसार ो बहुत कम प्रभावित कर पाते हैं। ऐसे व्यवसाय वाले मनुष्यों की संख्या दिन तिदिन घट रही है। इन व्यवसायों में लोगों की दिलचस्पी केवल इसलिये है कि वे

इस बात का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि प्राचीन समय में मनुष्य किस प्रकार जीविकोपार्जन करता था। इस प्रकार वे केवल इस बात का ही कि मनुष्य किस प्रकार प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठ रूप में वातावरण पर आश्रित है, उदाहरण प्रस्तुत नहीं करते वरन् साथ ही पूर्वजों के जीवन के बारे में परिचय देते हैं।

कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में लगे हुए मनुष्यों के विषय का वर्णन करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक होगा कि अनुमानतः भूमंडल के विभिन्न भागों में रहने वालों में किस सीमा तक सीमित हैं। एक प्रकार से तो वे विशेष क्रियाओं के कारण एक प्रतिभासम्पन्न समुदाय बनाते हैं। जितना ही हम प्राचीन समय की ओर ध्यान देते हैं कृषि करने वाले मनुष्यों द्वारा निर्वासित भूमि सभी महाद्वीपों में कम मिलती जाती है। यह सत्य ही है कि यूरोप में हिम युग (Lce Age) के पूर्व और पश्चात् पैलिओलिथिक शिकारी (Palaeolithic hunters) रहते थे और कृषि का फैलाव पूर्व एवं दक्षिण को वेरे धीरे-धीरे लगभग ३००० वर्ष ई० पू० से प्रारम्भ हुआ।

आखेट करने वाले मनुष्य भी किसी भाँति एक दशा में नहीं रहे हैं। उनमें भी बड़ी विभिन्नता है और कुछ के तो ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें अपनी निर्ज विशेषताएँ मिलती हैं। उनमें इतनी आर्थिक विभिन्नताएँ हैं कि इन सब आखेट करने वालों, मछुवाहों एव जंगली जड़ी-बूटी एवं फल एकत्र करने वालों को एक शब्द से पुकारने के लिए कोई एक विस्तृत शब्द ही नहीं मिलता। कभी 'फल एकत्र करने वाले' (food gatherers) शब्दों का प्रयोग किया जाता है परन्तु इन शब्दों से विशिष्ट शिकारी एवं मछुवाहों का उद्देश्य नहीं पूरा हो पाता। इनमें से बहुत से मनुष्यों की विशेष एकाग्रता प्राकृतिक वातावरण के एक ही साधन पर है—जैसे बुशमेन राज्य का विस्तृत जंगली आखेट करना, ब्रिटिश कोलम्बिया तटीय सालमन एवं जलीय जीव जन्तु एवं पौदों पर आश्रित जीवन, उत्तरी एशिया और अमेरिका के जंगली रेणिडयर और 'आर्कटिक प्रदेश के समुद्रीय मैमल (Mammals) एक भूभाग के मनुष्य और दूसरे भूभाग वाले मनुष्यों के भोजन में महान अन्तर हो सकता है। एस्कीमों और मैदानी शिकारी प्रायः मांस पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं और ब्रिटिश कोलम्बिया के तट और नदियों के पास रहने वाले, नार्वे के निवासियों तथा पूर्वी साइबेरिया के मनुष्यों का जीवन पूर्णतया मछली पर निर्भर है। परन्तु मौलिक रूप से उनकी प्राकृतिक साधनों की शोषण शक्ति, औजार, भोजन तथा रीतिरिवाज सीमांग जैसे समुदायों से भिन्न है जो कि शायद ही कभी मांस खाते हों।

फल आदि एकत्र करना, आखेट करना तथा मछली पकड़ना भिन्न-भिन्न मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं के भिन्न-भिन्न मात्रा के तत्व हैं। विशुद्ध फल आदि इकट्ठा करने वाले या आखेट करने वाले अथवा मछली पकड़ने वाले अप्राप्य हैं परन्तु विशिष्ट मनुष्यों म आखेट करना तथा मछली पकड़ना केवल फल आदि एकत्र करने की-अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं।

खण्ड २

पशु-पालन

पशु चराने वाले गड़रियों की संख्या भेड़ों व बकरियों के झुण्ड पर आश्रित है जो अनेक प्रकार की वनस्पति पर चराया जाता है। प्रायः चरागाह के समाप्त होने पर वे उसे छोड़कर दूसरी जगह को चल देते हैं। इस प्रकार जानवरों की संख्या और नस्ल स्थान-स्थान पर तथा समय समय पर भोजन एवं पानी की विभिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होती है। साधारणतया जहाँ चरागाह कम हैं वहाँ भेड़ों की बहुतायत हैं; और जहाँ चरागाह अच्छे हैं वहाँ पशु अधिक पाये जाते हैं। घोड़े और गधे भी आमतौर से पाये जाते हैं जो कि यातायात के साधन हैं। उसी प्रकार गर्म और सूखे भागों में ऊँट और ध्रुवीय प्रदेशों में रेण्डियर बड़े उपयोगी पशु हैं। भू-पटल के लगभग १०% भाग पर चरवाहे रहते हैं। वे भूमध्यरेखीय एवं ध्रुवीय प्रदेशों में नहीं पाये जाते हैं और वहाँ उनकी संख्या एवं महत्ता कम है क्योंकि वे जिन प्रदेशों में रहते हैं, वे उन्नति के सीमित अवसर प्रदान करते हैं।

पशुपालकों को प्रायः अपने पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना पड़ता है क्योंकि चरागाह कमजोर होते हैं और शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार दैनिक अथवा साप्ताहिक स्थानपरिवर्तन आवश्यक हो जाता है और ऋतु परिवर्तन के साथ प्रायः दूर प्रदेशों को भी चले जाते हैं। कभी-कभी नीची एवं ऊँची भूमि के बीच भी स्थान परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए उत्तरी अफ्रीका में सहारा के उत्तरीपश्चिमी किनारों पर पशु चराने वाले गड़रिये जाड़े के दिनों में रेगिस्तान की ओर चल देते हैं, जब वहाँ वर्षा की कमी के साथ चरागाह कम हो जाते हैं। परन्तु ग्रीष्म के प्रारम्भ में एटलस पर्वत की ओर वापस आते हैं जब पानी की कमी हो जाती है और निचली घाटियों के चरागाह कम हो जाते हैं। इसी प्रकार का स्थान-परिवर्तन सूडान की मरुभूमि, ईरान के पठार, अरब, मध्य एशिया, स्पेन और

सामूहिक स्वामी नहीं है; फिर भी यह स्थान-परिवर्तन हजारों वर्षों के रीति-रिवाजों के अनुसार मोटे तौर पर निश्चित उपजातियों में सीमित है।

पशु पालन भौतिक सम्पत्ति की संख्या एवं प्रकार पर बाधा डालता है जिससे वे अधिक संख्या में नहीं हो सकते और अधिकतर जानवरों से प्राप्त होते हैं अथवा सीमित आदान-प्रदान (Bartering) से। अतः भोजन अधिकतर जानवरों से प्राप्त होता है जैसे दूध, पनीर, मांस। सम्भवतः चाय या अन्य पेय वस्तु आदान-प्रदान से प्राप्त होती थी। उसी तरह निवास-स्थान जैसी आवश्यकतायें भी खाल, चमड़ा या ऊन से पूरी की जाती हैं।

पशु चराने वालों का जीवन संकटमय एवं उदासीन होता है। आवश्यकता से अधिक भोजन इनके पास नहीं हो पाता और सदैव उसकी किस्में सीमित होती हैं; कभी-कभी भोजन का अभाव अथवा अकाल तक की दशा आ जाती है। भूख एवं आवश्यकताओं से विवश होकर इन लोगों ने पहिले समृद्धिशाली पड़ोसियों पर आक्रमण किया। इस प्रकार जो उनके पास न था, उसे प्राप्त किया। कुछ दशाओं में तो उन्हें परास्त करके नष्ट भी कर दिया और अधिक सम्पन्न एवं विस्तृत नीची भूमि पर अधिकार जमाया। मध्य यूरेशिया के घास के मैदानों से लोग चीन, भारत और पश्चिमी योरप के मैदानों में आ गये और इन उपर्युक्त क्षेत्रों के निवासियों के साथ समय की गति के अनुसार धीरे-धीरे पूर्णतया मिल गये। ऐसे बड़े-बड़े स्थानान्तरण (migrations) जो सम्भवतः अब नहीं होते, जलाभाव के कारण हुआ करते थे। वर्तमान काल के चारवाहे मार्ग प्रदर्शन से प्राप्तधन, व्यापार, भा एवं कारवाँ को लूट कर जो धन प्राप्त करते हैं उसी से अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

चरवाहों के जीवन का ढंग जो कि बहुत अधिक समय से निकटवर्तीय प्रदेश में स्थिर रूप से रहने वाले मनुष्यों के लिए सतत हानिप्रद था, अब वह कोई भयप्रद नहीं रहा, इसका कारण यह है कि शिल्पादि की उत्तरोत्तर वृद्धि ने उनके अचानक आक्रमण का केवल सफलतापूर्वक सामना करने में ही समर्थ नहीं बनाया वरन् ऐसे आक्रमणकारियों को अपनाने में भी सहायक हुआ। अतएव प्राचीनकाल में यद्यपि ये चरवाहे अपने निकटवर्तीय मनुष्यों को, जो कि संख्या में अधिक थे परन्तु लड़ाकू कम थे, बहुत परेशान करते थे; अब वे कुछ अपवादजनक उदाहरणों के अतिरिक्त व्यापारिक पशुपालन और शुष्क कृषि (Commercial Grazing and Dry Farming) की वृद्धि से इस सम्बन्ध में कई वर्षों से पिछड़ रहे हैं। इस बात में पिछड़ने से उनकी संख्या में भी कमी हुई है।

मध्यएशिया के ऊँचे पठार पर रहने वाले खिरगीज पूर्णतया उन चरवाहों के जानवरों पर जीवन निर्वाह के लिए आश्रित रहे जो कि मौसम के परिवर्तन के साथ अत्यधिक दूर स्थानों तक अपने जानवरों के झुण्डों को ले जाते हैं। यद्यपि खिरगीज के आंशिक स्थानान्तरण ने कुछ सीमा तक जीवन निर्वाह की प्रणाली को बदल दिया है, तो भी जहाँ वे रहते हैं वहाँ अब भी पशु-पालन के लक्षण दिखाई देते हैं।

खण्ड ३

कृषि

यों का प्राचीनतम व्यवसाय है। मनुष्य पहिले चाहे चरवाहा रहा हो अथवा कृषक, इस प्रकार की क्रियाओं ने कुछ अंश में सहयोग एवं सामूहिक कार्य की भावनाएँ उसके हृदय में उत्पन्न की। कृषि सम्बन्धी क्रियाएँ मनुष्य के मिट्टी के जोतने-बोने एवं उन उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित हैं जो कि प्रत्यक्ष रूप से इस पर आश्रित हैं।

कृषि का प्रारम्भ उस समय हुआ जब कि खेमों के आस-पास अंकुरित बीज पाये गये जो कि संयोग से गिर गये और अनुकूल जलवायु सम्बन्धी दशाओं में उगे। यह मानव की उन्नति का प्रथम चरण था, क्योंकि पौधों का उगाया जाना जंगली जानवरों की खोज के प्रयास को बचा दिया; इसने प्रकृति प्रदत्त भोजन सामग्री के समय-समय पर स्थानान्तरण की आवश्यकता को दूर किया, और इससे अच्छा और उचित भोजन प्राप्त होने लगा। किसी न किसी रूप में स्थिर बस्ती और अपरिवर्तित जीवन सम्भव हो गया। इसके पश्चात् यह अविलम्ब ही ज्ञात किया गया कि बीजों के चुनाव से विभिन्न पौधों की किस्में सुधारी जा सकती हैं और अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार धीरे-धीरे कृषि का विकास हुआ और आधुनिक कृषि सम्बन्धी क्रियाओं को रूप मिला।

संसार के प्रत्येक भाग में कृषि के सम्बन्ध में समान परिवर्तन नहीं हुआ। इसके परिणाम स्वरूप कुछ भागों में अब भी प्राचीन कालीन ढंग पर ही कृषि की जाती है। उदाहरणार्थ फ्रांसीसी विषुवतीय अफ्रीका की 'फान्ग' (Fang) नामक जाति अब भी अस्थिर एवं शोषित कृषि का प्रयोग करती है। ऐसी जनसंख्या एवं उनके जीवन निर्वाह के साधन विषुवत् रेखीय बन के अर्द्धकृषक जनसंख्या के द्योतक हैं।

कृषि सम्बन्धी क्रियाएँ दो मुख्य उद्देश्यों में से एक के अनुसार होती हैं : (१)

स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये, (२) अन्य मनुष्यों द्वारा इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये। पहिले प्रकार की क्रियाओं को जीविका निर्वाह सम्बन्धी कृषि (Subsistence Agriculture) और दूसरी को वाणिज्य सम्बन्धी कृषि (Commercial Agriculture) कहते हैं।

(१) जीविका निर्वाह सम्बन्धी कृषि
(Subsistence Agriculture)

इसकी महत्ता समय एवं स्थान के अनुसार बदलती रहती है। कृषि के प्रारम्भ काल में सारी कृषि इसी प्रकार की थी। परन्तु आज हम बड़ा परिवर्तन देखते हैं, क्योंकि अधिकतर क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धी उपज आंशिक-स्थानीय उपभोग के लिये और आंशिक बाजार में बेचने के लिये होती है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मक्का वाली पेटी के कृषक गृह उपभोग के लिये जानवरों को काटते हैं और अपने प्रयोग के लिये सुअर एवं गाय का गोश्त (Pork and beef) तैयार करते हैं। कृषि का यह स्वरूप वास्तव में जीविका निर्वाह सम्बन्धी कृषि का ही एक अंग है। इसके विपरीत अधिकांश अनाज एवं घास या तो यों ही बेच दिया जाता है अथवा पशुओं को खिला कर उन्हें मोटा कर या दूध देने वाले जानवर के रूप में या दूध, घी, मक्खन, पनीर आदि के रूप में बेच दिये जाते हैं, इस प्रकार की मिश्रित कृषि संसार के सम्पूर्ण अन्न उत्पन्न करने वाले भागों में प्रचलित है। कुछ अधिक घनी जनसंख्यावाले भारत और चीन जैसे देशों के कृषक अनाज का उपभोग प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। वे खाद्य पदार्थ को मांस के लिये जानवरों को नहीं खिलाते और उनका उत्पादन इतना कम है कि वहाँ कभी बचत ही नहीं होती, जिसे एकत्र किया जा सके या अन्य वस्तुओं से विनिमय कर लिया जाये। ये संसार की भयानक अकाल वाली पेटियाँ हैं। कृषि का व्यवसाय होने वाले देशों में जीविका निर्वाह सम्बन्धी कृषि एक विशेष रूप में ही है जिससे विनिमय असम्भव है। इस प्रकार की कृषि कुछ विशेष दशाओं की विशेषता है जो कि वहीं पाई जाती हैं जहाँ जनसंख्या कम है, आवागमन के साधन कम हैं और जनसंख्या का घनत्व काफी है जिससे सारा खाद्य पदार्थ मनुष्य के भोजन में प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग किया जाता है।

(२) वाणिज्य सम्बन्धी कृषि (Commercial Agriculture)

आधुनिक युग में थलमार्ग, जलमार्ग एवं वायु मार्ग के साधन की सुविधाओं ने व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है। आयोवा (Iowa)

के मक्का पैदा करने वाले कृषक, यूक्रेन के गेहूँ उत्पन्न करने वाले, मिश्र के रुई पैदा करने, भारत के जूट उत्पादक कृषक और विषुवत रेखीय प्रदेशों के कहवा, केला, मसाले तथा कोका (Coka) पैदा करने वाले कृषक अपनी वस्तुओं की बचत में सफलतापूर्वक विनिमय कर सकते हैं। प्रत्येक प्रदेश पदार्थों को वातावरण के अनुकूल उत्पन्न करने एवं उसकी बचत को दूरस्थ प्रदेशों से विनिमय करने में विशिष्टीकरण को प्राप्त कर रहे हैं। यहाँ तक कि जापान के रेशम उत्पन्न करने वाले एवं आसाम के चाय पैदा करने वाले भी वाणिज्य सम्बन्धी कृषि के अन्तर्गत आ जाते हैं। वाणिज्य सम्बन्धी कृषि का तात्पर्य है कि कृषि सम्बन्धी पदार्थों के उत्पादन एवं बचत की वस्तुओं का पैदा करने वालों की आवश्यकताओं की अन्य वस्तुओं के लिये विनिमय करना। आज के अधिकतर उन्नतिशील एवं औद्योगिक राष्ट्रों में इसी प्रकार की कृषि की जाती है।

खण्ड ४

बन काटना

बन प्राचीन समय से ही, जब कि कोई लिखित लेखा प्राप्य न था, मनुष्यों के कार्यों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते आये हैं। तो भी इनका वास्तविक एवं सापेक्षिक मूल्य समय-समय पर मनुष्य की सभ्यता के विकास तथा भिन्न-भिन्न स्थान पर विकास के परिणाम के अनुकुल बदलता रहा है।

उस समय जब कि मनुष्य आग जलाना नहीं जानता था उसके औजार भी बहुत कम एवं भद्दे किस्म के थे, अधिक घने बन वाले प्रदेशों का उपयोग दुष्कर था। मनुष्य ने प्रारम्भ में अपना निवास पैतृक सीमाओं के अनुसार बनों के मध्य में या किनारे ही बनाया जैसा कि वर्षा वाले विषुवत् रेखीय प्रदेश के निवासी बनाया करते थे। उस समय भी निःसन्देह लोगों ने बन की उपज का उपभोग किया। आदि कालीन निवासियों के लिये बन लाभप्रद होने के बजाय हानिप्रद थे।

तत्पश्चात् जब औजार का विकास एवं विशिष्टीकरण हुआ तो बनों का महत्व एवं उपयोग बढ़ गया, क्योंकि बनों से केवल नारियल एवं फल ही नहीं वरन् बन के कुछ उपजों से कपड़ा भी बनाया जाने लगा। बन की लकड़ी का प्रयोग ईंधन के रूप में और मकानों के निर्माण में होने लगा।

जब मनुष्य खेती करने लगा और जंगली जड़ी-बूटी एवं जानवरों पर ही

पूर्णतया निर्भर न रहने लगा, तब बनों का महत्व कृषकों के लिये एक बार पुनः बदल गया। तब बन पुनः कृषि व्यवसाय में बाधक सिद्ध हुए, क्योंकि कृषि सम्बन्धी फसल के लिये वनों का कुछ न कुछ साफ करना आवश्यक है। औजारों की संख्या कम होने तथा बन काटने में प्रभावशाली न होने के कारण मनुष्य की प्रारम्भिक सभ्यता के समय यह कठिन था। परिणाम स्वरूप ऐसे औजारों द्वारा पेड़ काट कर गिराने में श्रम एवं समय दोनों अधिक लगते थे। सघन जंगलों में आग का प्रयोग करने पर भी इनका साफ करना असम्भव था। अतः यह निश्चित है कि मनुष्य ने प्रथम कृषि का प्रयास कम पेड़ों वाले भागों अथवा चरागाहों में किया होगा। इस समय भी जंगलों से अनेक मनुष्यों की आवश्यकताएँ पूर्ति होती थीं, साथ ही ईंधन एवं गृह निर्माण की सामग्री भी प्राप्त होती थी।

समय की गति के साथ मनुष्य ने अपार उन्नति की और संसार के घने से घने जंगलों को साफ करने में सफल हुआ और आज जंगलों से आच्छादित भूमि कृषि से लहलहा रही है। आदिकालीन निवासियों के लिये जंगल की लकड़ी आवश्यकता से अधिक थी, अतः लकड़ी काट कर बरबाद हो जाती थी।

इस प्रकार से जंगल साफ करना कोई सर्वमान्य प्रणाली नहीं है। ऐसा सोचा जाता है कि चरागाह फसल की जमीन, बन वाली जमीन में उचित सन्तुलन है, क्योंकि हरएक कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। बिना ऐसे सन्तुलन के किसी का प्रभावशाली प्रयोग असम्भव है। अतएव आज हम साधारणतया वृक्षों को नष्ट नहीं करते वरन् उनको लकड़ी में बदल देते है, और बनों का प्रयोग कृषि के लिये या अन्य कार्य के लिये, किया जाता है।

सभ्यता का विकास बहुत कुछ बनों के कारण हुआ। बनों की लकड़ी से खेत जोतने एवं जंगली पशुओं को, जोकि मानव शत्रु हैं, मारने के लिये अनेक औजार बनाये जाते हैं। समुद्रीय जलयान हमारे पूर्वजों ने लकड़ी की सहायता से ही बनाये। वृक्षों से फल प्राप्त होते है जो मनुष्य के भोजन के काम में आते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि जंगल की उपज विशेषतया लकड़ी बहुत कम महत्वपूर्ण होती जा रही है। यह विचार गलत है, क्योंकि कागज की मिलों में दिन प्रति दिन लुगदी की माँग बढ़ रही है। बन काटने का व्यवसाय दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—लट्ठे गिराना तथा बन की उपज की खोज। लट्ठे गिराने के लिये आवश्यक वृक्ष सेदार, मोहागनी, टीक, ओक, पाइन, फर और स्प्रूस हैं। बन की प्रमुख उपज गोंद, लेटेक्स [Latex) कार्क, जड़ी, बूटी, रेजिन और जंगली फल एवं नारियल हैं।

पृथ्वी की हद पत में कुछ मन्द एवं कुछ तीव्र गति से करोड़ों वर्षों से परिवर्तन हो रहे हैं। ये मंद गति से होने वाले परिवर्तन अदृश्य हैं, परन्तु तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन जैसे ज्वालामुखी पर्वतों के उद्गार एवं भूचाल प्रत्यक्ष स्पष्ट हैं। इस परिवर्तन का एक उपफल खनिज पदार्थों का केन्द्रीभूत होना है। जिनका आर्थिक महत्व अत्यधिक है। कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस (Natural gas) आदि वन एवं जीवधारियों के अवशेष मात्र हैं। अगर कोई खनिज पदार्थ अच्छी तरह से चट्टानों में मिल जाय तो उसकी आर्थिक खोज लगभग असम्भव है परन्तु जहाँ जीवधारी अथवा अजीवधारी अभिकर्ताओं द्वारा इनका केन्द्रीकरण हुआ है, वहाँ उनका व्यापारिक शोषण प्रायः सम्भव होता है। कभी-कभी ये अत्यधिक गहराई पर होते हैं, इस कारण हजारों वर्षों तक खनिज पदार्थों का पता नहीं लगता। गहराई पर पाए जाने वाले ऐसे खनिज पदार्थ बड़ी कठिनाई के साथ खोदे जाते हैं। अतः उनका महत्व कम हो जाता है। धातु सम्बन्धी (Metallic) एवं अधातु-सम्बन्धी (Non-metallic) खनिज पदार्थों का पाया जाना परिमाण एवं फैलाव के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। कुछ कोयले और लोहे की तरह अनेक स्थानों में पाये जाते हैं और प्रायः अत्यधिक परिमाण में प्राप्त होते हैं। दूसरे जैसे टीन आदि, कुछ ही स्थानों में और सीमित मात्रा में ही प्राप्य हैं।

आज हम शताब्दियों पूर्व एकत्र खनिज पदार्थों को निकाल रहे हैं। इस प्रकार खान खोदने का व्यवसाय आर्थिक क्रियाओं से भिन्न है। उदाहरण के लिए जब मनुष्य आखेट एवं मत्स्य कार्य जैसे व्यवसायों से जीविका निर्वाह करता है तो वह कुछ जीवों को उनकी भी जाति-संख्या बढ़ाने के लिये छोड़ देता है। जब वह जंगल काटता है तो अवसर मिलने पर वृक्ष पुनः अंकुरित हो जाते हैं। इसी प्रकार जब वह खेत से फसल काट लेता है तो उसी खेत में दूसरी फसल तैयार की जा सकती है; परन्तु जब वह खनिज पदार्थों को खानों से निकाल लेता है तो कम से कम अपने जीवन-पर्यन्त उस खान में खनिज पदार्थों का पुनरस्थापन नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब हम सारा कोयला निकाल चुकेंगे अथवा सारा पेट्रोलियम निकाल लेंगे तो हमें गर्मी एवं शक्ति उत्पन्न करने के लिये किन्हीं दूसरे साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। इसी प्रकार जब हम सारा लोहा खानों से खोद चुकेंगे और

उसका प्रयोग हो चुकेगा, तो लोहे का कोई पूरक ढूँढ़ना पड़ेगा। अतएव जो खनिज पदार्थ हमको प्राप्त हैं उनका बड़ी सावधानी से उपभोग करना चाहिये ताकि भविष्य में जब ये समाप्त हो जायें तो अधिक से अधिक समय तक काम चलता रहे।

खण्ड ६

उद्योग-धंधे (Manufacturing)

अत्यन्त प्राचीन समय में जब मनुष्य की संख्या कम थी और जनसंख्या तितर-बितर थी, बिना किसी अन्य मनुष्यों की सहायता के उनकी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये उसे Jack of all trades होना पड़ता था। तत्पश्चात् वह बड़े-बड़े समुदायों में रहने लगा जहाँ कुछ व्यक्तिगत मनुष्य कुछ विशेष चीजों के उत्पादन में, जो कि सार्वजनिक हित की थीं, निपुण हो गये। इस प्रकार समुदाय के एक या दो सदस्यों ने बाण बनाने में विशेष योग्यता प्राप्त की, दूसरे मिट्टी के बर्तन बनाने में निपुण हो गये। यही उद्योग का प्रारम्भिक काल था जो आखेट, मत्स्य-कार्य, पशु पालन एवं कृषि आदि आर्थिक क्रियाओं से भिन्न था। इतना होने पर भी इस समय चूँकि वस्तुओं की माँग निश्चित क्षेत्र में ही थी और उसके विस्तार के कोई साधन न थे, अतएव अनेक पीढ़ियों तक ये केवल अनिश्चित समय के ही उद्योग रहे।

तत्पश्चात् संसार के सम्बन्ध में ज्ञानवृद्धि होने से नई-नई पूर्ति के साधन (Sources of Supply) एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के कच्चे माल प्राप्त हुए जिससे उस समय के वस्तु-निर्माण (Manufacturing) में पर्याप्त सफलता मिली। प्राचीन समय के वस्तु-निर्माण में मनुष्य (Manpower) स्वयं शक्ति साधन था क्योंकि उस समय जल विद्युत् अथवा भाप शक्ति आदि के ज्ञान का अभाव था। ज्यों-ज्यों नई खोजें व्यापार क्षेत्र एवं उत्पादन क्षेत्र को विस्तृत करती गईं त्यों-त्यों उद्योग की विशेष योग्यता में वृद्धि हुई और उसी प्रकार आज भी औद्योगिक उन्नति का प्रारम्भ हुआ। यह विकास विशेषतया जल विद्युत् शक्ति के विकास एवं भाप-शक्ति के कारण अधिक तीव्र गति से हुआ। यह तो ठीक है कि इन शक्तियों के कारण ही आधुनिक औद्योगिक उन्नति हुई, परन्तु उद्योग-धन्धे व्यापार का अंग तभी बन सके जब कि कच्चे माल अनेक साधनों एवं अधिक उत्पादन वाले भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आने लगे, क्योंकि इनकी अनुपस्थिति में उद्योग-धन्धों के उत्पादन की मात्रा एवं प्रकार सीमित ही थे।

कच्चे माल के मौलिक रूप को परिवर्तित करके उसे मानव-हित के लिये

अधिक उपयोगी बनाना वस्तु-निर्माण का लक्ष्य है। अतएव जहाँ मनुष्य होंगे वहाँ वस्तु-निर्माण अवश्य होगा, क्योंकि प्रत्येक स्त्री भोजन पकाती है अथवा वस्तु-निर्माण में सहायक होती है; उसी प्रकार कोई मनुष्य गृह निर्माण करता है और कोई अन्य काम करता है और इससे वे कच्ची वस्तु के रूप को बदल देते हैं। तैयार माल की उपयोगिता उसी समय है जब उसकी आवश्यकता है। इस प्रकार प्रत्येक उद्योगी का यह कर्तव्य है कि वह वस्तुओं की यह 'रूप संबन्धी उपयोगिता' (Form utility) उत्पन्न करे। आज की दुनिया में हम साधारण किस्म से लेकर और ऊँची किस्म की वस्तुओं का निर्माण करते हैं। वस्तु-निर्माण सम्बन्धी उद्योग-धन्धे का विस्तृत अथवा संकुचित रूप से केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीकरण हो सकता है। उसमें अधिक अथवा कम् निपुणता की आवश्यकता हो सकती है; वह मशीन मिश्रित अथवा मशीन रहित हो सकता है तथा उसी प्रकार इसमें प्राणहीन शक्ति का प्रयोग हो सकता है और नहीं भी। वह बड़े-बड़े कारखानों अथवा छोटे-छोटे निर्माण-गृह (Workshops) में हो सकता है। हर एक दशा में वस्तु-निर्माण कार्य मानव की आवश्यकतानुसार विकसित होता है। भली भाँति अपनी स्थिरता रखने के लिये इसे श्रम (Labour), पूँजी (Capital), एवं भूमि (Land) के प्रयोग के लिए अन्य क्रियाओं से मुकाबला करने में समर्थ होना चाहिए। प्रत्येक दशा में वस्तु निर्माण की स्थिति एवं विकास कुछ मौलिक 'दशाओं पर निर्भर है:—(१) बाजार की दूरी, (२) कच्चे माल की पहुँच, (३) यातायात के साधन (४) श्रम, (५) शक्ति, (६) धन एवं अन्य प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दशाएँ जैसे जलवायु, सभ्यता एवं सरकार आदि। कभी इन दशाओं में एक या दो अत्यावश्यक हैं। परन्तु किसी वस्तु-निर्माण सम्बन्धी क्रिया (Manufacturing) के विकास के लिये उपरोक्त दशाओं की आवश्यकता है।

संसार के अत्यधिक घने बसे हुए एवं अत्यन्त उन्नतिशील देशों में एक ही आर्थिक क्रिया में मनुष्य अपनी शक्ति को केन्द्रीभूत नहीं करते हैं; क्योंकि एक आर्थिक क्रिया का विकास दूसरी क्रियाओं को करने का अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार औद्योगिक प्रदेश अन्य आर्थिक क्रिया होने वाले प्रदेश से भिन्न नहीं होते हैं, अन्तर केवल इतना होता है कि वहाँ वस्तु-निर्माण प्रधान होता है और उसकी महत्ता भी अधिक होती है।

गत शताब्दी से औद्योगीकरण का अधिक विकास हुआ है, क्योंकि १८६० ई० में इतना अधिक उत्पादन न था। यह केवल उस समय अपने बाल्यावस्था में अनेक वर्षों तक रहा। अभी तक हमारी सभ्यता ग्रामों से नगरों की ओर बढ़ रही है

उसका प्रयोग हो चुकेगा, तो लोहे का कोई पूरक ढूँढ़ना पड़ेगा। अतएव जो खनिज पदार्थ हमको प्राप्त हैं उनका बड़ी सावधानी से उपभोग करना चाहिये ताकि भविष्य में जब ये समाप्त हो जायें तो अधिक से अधिक समय तक काम चलता रहे।

खण्ड ६

उद्योग-धंधे (Manufacturing)

अत्यन्त प्राचीन समय में जब मनुष्य की संख्या कम थी और जनसंख्या तितर-बितर थी, बिना किसी अन्य मनुष्यों की सहायता के उनकी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये उसे Jack of all trades होना पड़ता था। तत्पश्चात् वह बड़े-बड़े समुदायों में रहने लगा जहाँ कुछ व्यक्तिगत् मनुष्य कुछ विशेष चीजों के उत्पादन में, जो कि सार्वजनिक हित की थीं, निपुण हो गये। इस प्रकार समुदाय के एक या दो सदस्यों ने बाण बनाने में विशेष योग्यता प्राप्त की, दूसरे मिट्टी के बर्तन बनाने में निपुण हो गये। यही उद्योग का प्रारम्भिक काल था जो आखेट, मत्स्य-कार्य, पशु पालन एवं कृषि आदि आर्थिक क्रियाओं से भिन्न था। इतना होने पर भी इस समय चूँकि वस्तुओं की माँग निश्चित क्षेत्र में ही थी और उसके विस्तार के कोई साधन न थे, अतएव अनेक पीढ़ियों तक ये केवल अनिश्चित समय के ही उद्योग रहे।

तत्पश्चात् संसार के सम्बन्ध में ज्ञानवृद्धि होने से नई-नई पूर्ति के साधन (Sources of Supply) एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के कच्चे माल प्राप्त हुए जिससे उस समय के वस्तु-निर्माण (Manufacturing) में पर्याप्त सफलता मिली। प्राचीन समय के वस्तु-निर्माण में मनुष्य (Manpower) स्वयं शक्ति साधन था क्योंकि उस समय जल विद्युत् अथवा भाप शक्ति आदि के ज्ञान का अभाव था। ज्यों-ज्यों नई खोजें व्यापार क्षेत्र एवं उत्पादन क्षेत्र को विस्तृत करती गईं त्यों-त्यों उद्योग की विशेष योग्यता में वृद्धि हुई और उसी प्रकार आज भी औद्योगिक उन्नति का प्रारम्भ हुआ। यह विकास विशेषतया जल विद्युत् शक्ति के विकास एवं भाप-शक्ति के कारण अधिक तीव्र गति से हुआ। यह तो ठीक है कि इन शक्तियों के कारण ही आधुनिक औद्योगिक उन्नति हुई, परन्तु उद्योग-धन्धे व्यापार का अंग तभी बन सके जब कि कच्चे माल अनेक साधनों एवं अधिक उत्पादन वाले भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आने लगे, क्योंकि इनकी अनुपस्थिति में उद्योग-धन्धों के उत्पादन की मात्रा एवं प्रकार सीमित ही थे।

कच्चे माल के मौलिक रूप को परिवर्तित करके उसे मानव-हित के लिये

अधिक उपयोगी बनाना वस्तु-निर्माण का लक्ष्य है। अतएव जहाँ मनुष्य होंगे वहाँ वस्तु-निर्माण अवश्य होगा, क्योंकि प्रत्येक स्त्री भोजन पकाती है अथवा वस्तु-निर्माण में सहायक होती है; उसी प्रकार कोई मनुष्य गृह निर्माण करता है और कोई अन्य काम करता है और इससे वे कच्ची वस्तु के रूप को बदल देते हैं। तैयार माल की उपयोगिता उसी समय है जब उसकी आवश्यकता है। इस प्रकार प्रत्येक उद्योगी का यह कर्तव्य है कि वह वस्तुओं की यह 'रूप संबन्धी उपयोगिता' (Form utility) उत्पन्न करे। आज की दुनिया में हम साधारण किस्म से लेकर और ऊँची किस्म की वस्तुओं का निर्माण करते हैं। वस्तु-निर्माण सम्बन्धी उद्योग-धन्धे का विस्तृत अथवा संकुचित रूप से केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीकरण हो सकता है। उसमें अधिक अथवा कम निपुणता की आवश्यकता हो सकती है; वह मशीन मिश्रित अथवा मशीन रहित हो सकता है तथा उसी प्रकार इसमें प्राणहीन शक्ति का प्रयोग हो सकता है और नहीं भी। वह बड़े-बड़े कारखानों अथवा छोटे-छोटे निर्माण-गृह (Workshops) में हो सकता है। हर एक दशा में वस्तु-निर्माण कार्य मानव की आवश्यकतानुसार विकसित होता है। भली भाँति अपनी स्थिरता रखने के लिये इसे श्रम (Labour), पूँजी (Capital), एवं भूमि (Land) के प्रयोग के लिए अन्य क्रियाओं से मुकाबला करने में समर्थ होना चाहिए। प्रत्येक दशा में वस्तु निर्माण की स्थिति एवं विकास कुछ मौलिक 'दशाओं पर निर्भर है:—(१) बाजार की दूरी, (२) कच्चे माल की पहुँच, (३) यातायात के साधन (४) श्रम, (५) शक्ति, (६) धन एवं अन्य प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दशाएँ जैसे जलवायु, सभ्यता एवं सरकार आदि। कभी इन दशाओं में एक या दो अत्यावश्यक हैं। परन्तु किसी वस्तु-निर्माण सम्बन्धी क्रिया (Manufacturing) के विकास के लिये उपरोक्त दशाओं की आवश्यकता है।

संसार के अत्यधिक घने बसे हुए एवं अत्यन्त उन्नतिशील देशों में एक ही आर्थिक क्रिया में मनुष्य अपनी शक्ति को केन्द्रीभूत नहीं करते हैं; क्योंकि एक आर्थिक क्रिया का विकास दूसरी क्रियाओं को करने का अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार औद्योगिक प्रदेश अन्य आर्थिक क्रिया होने वाले प्रदेश से भिन्न नहीं होते हैं, अन्तर केवल इतना होता है कि वहाँ वस्तु-निर्माण प्रधान होता है और उसकी महत्ता भी अधिक होती है।

गत शताब्दी से औद्योगीकरण का अधिक विकास हुआ है, क्योंकि १८६० ई० में इतना अधिक उत्पादन न था। यह केवल उस समय अपने बाल्यावस्था में अनेक वर्षों तक रहा। अभी तक हमारी सभ्यता ग्रामों से नगरों की ओर बढ़ रही है

और साथ ही नगरों की जनसंख्या तथा रूप (Form) भी बढ़ते रहे हैं। यह अब भी चालू रहेगा कि नहीं, विवाद-ग्रस्त है, परन्तु विचारणीय विषय है।

खण्ड ७

यातायात एवं आवागमन

(Transportation and Communication)

केवल आज से नहीं वरन् प्राचीन समय से मनुष्य स्वयं तथा अपनी सम्पत्ति एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाया करता था। यह उसकी अनेक आवश्यकताओं में से एक थी। प्राचीन समय में जब एक स्थान के फल तथा खाद्य जड़ी-बूटियाँ समाप्त हो जाती थीं तो वह दूसरे स्थान को जाता था। तत्पश्चात् पशु-पालन युग में जब मनुष्य का जीवन पशुओं पर ही निर्भर था, चरागाहों के समाप्त हो जाने पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था। आधुनिक आखेट करने वाले तथा चरवाहों के जीवन में भी हम स्थान-परिवर्तन पाते हैं। इतना ही नहीं आज इन लोगों के व्यक्तिगत तथा उत्पादन सम्बन्धी स्थान परिवर्तन अत्यधिक उन्नतिशील लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति से कहीं अधिक बड़े रूप में देखा जाता है। यह वर्तमान शताब्दी की प्रगति है। मनुष्य की उन्नति तथा विकास दूरस्थ प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर हुई और इस प्रकार आवश्यकतानुसार वस्तुएँ एक से दूसरे स्थान को ले जाई गईं, क्योंकि कोई भी क्षेत्र कितना ही प्राकृतिक दशाओं से परिपूर्ण क्यों न हो वहाँ के निवासियों की सारी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता है। इस प्रकार Transportation is civilisation अर्थात् वस्तुओं का यातायात ही सभ्यता का आधार है।

पहिले मनुष्य के आवागमन के साधन सीमित थे। आदि कालीन मनुष्य नंगे पैर चलता था जैसे आज भी संसार के अनेक गर्म देशों में लोग नंगे पैर चलते हैं परन्तु अधिक सुविधा, आराम एवं संतोषपूर्ण चाल से यात्रा करने की सम्भावना किसी न किसी प्रकार भोज्य पदार्थ एवं अनेक सहायक युक्तियों जैसे सीढ़ियों तथा 'इलेक्ट्रिक लिफ्ट' की द्वारा पूर्ण हुई।

प्रत्येक प्रकार के आवागमन के साधन मनुष्य के स्थान परिवर्तन, उसके विचार एवं माल के आदान-प्रदान की सुविधा के लिये होते हैं। टेलीफोन, टेलीग्राफ, केबुल और रेडियो द्वारा मनुष्य अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। उसी प्रकार जहाजों, रेलों, गाड़ियों तथा मोटर कार, हवाई जहाज तथा पशु मनुष्यों

के माल को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हैं। जब वस्तु निर्माण क्रिया द्वारा जब किसी कच्चे माल को वस्तु के रूप में बदल दिया जाता है तब इसके रूप की उपयोगिता (Form utility) बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब आवागमन के साधनों द्वारा कोई वस्तु किसी ऐसे स्थान पर ले जाई जाती है जहाँ वह प्राप्य नहीं है और उसकी उपयोगिता है; तब उसकी स्थान सम्बन्धी उपयोगिता (Place utility) बढ़ जाती है। Just as manufacturing creates "Form-utility" in the commodities, so transportation creates "Place utility."

राजमार्ग (Roads) इसलिए केवल मानव संस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण नहीं है कि वह मानव स्थिति के लिए मौलिक है परन्तु इसलिये भी कि राज्य के विभिन्न भागों में भी इसका महत्व है। अनेक नगरों की स्थिति एवं विकास सड़कों पर निर्भर है। सड़कों के द्वारा ही युद्धों का संचालन एवं स्थान निश्चित होता है। सारी आर्थिक क्रियाओं का विकास सड़कों द्वारा ही होता है। व्यापार सड़कों द्वारा ही सम्भव है। यदि सड़क न हो तो बिना पथ-प्रदर्शन के किसी स्थान की उन्नति करना एक व्यर्थ की अनुभूति होगी, बिना इसके संगठित समाज नहीं बन सकता; इस प्रकार सड़कें प्रगतिशील हैं और सारे इतिहास पर प्रभाव डालती हैं। आवागमन के साधनों की इतनी अधिक महत्ता है कि यदि सड़कें न हों तो अन्न के निर्यात के बन्द हो जाने से भोजन की कमी के कारण एक ही सप्ताह में अनेक क्षेत्र अन्न की कमी से पीड़ित हो जावें।

खण्ड ८

व्यापार एवं वाणिज्य

व्यापार अथवा माल का बड़े रूप में आदान-प्रदान हाल ही के विकास की आर्थिक क्रिया है। ऐसे व्यापार में दोनों ही आवश्यक है अतिरिक्त उत्पादक अर्थात् 'विक्रेता' एवं अतिरिक्त उत्पादन को चाहने वाले अर्थात् 'ग्राहक'। इसके अतिरिक्त व्यापार में सारी वस्तुओं को उनके उत्पादन क्षेत्र से उन क्षेत्रों में भेजने का कार्य होता है जहाँ उनकी आवश्यकता होती है। मनुष्य के प्रारम्भिक विकास-काल में व्यापार की उन्नति के उपरोक्त साधनों में से कोई भी पूर्णतया उपयुक्त थे। वास्तव में गत १५० वर्षों से ही केवल कुछ क्षेत्रों में बड़े रूप में व्यापार की उन्नति के लिये उचित दशायें प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार व्यापार उस समय पश्चिमी देशों में भूमध्य सागर के निकटवर्ती प्रदेशों में सीमित था। यद्यपि यह आज के व्यापार के

मुकाबले में बहुत कम था फिर भी उस समय के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्व पूर्ण था।

जब तक मनुष्य का व्यवसाय आखेट करना था पशु-पालन एवं प्रारम्भिक कृषि उसकी कुछ ही आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी, उस समय तक उसकी आवश्यकतायें स्थानीय साधनों से प्राप्त वस्तुओं से पूरी हो जाती थीं। तत्पश्चात् बहुत समय तक मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रही और अतिरिक्त बचत (Surplus) बहुत कम थी। आज भी उपरोक्त प्रारम्भिक व्यवसाय करने वाले क्षेत्रों में ये दशायें पाई जाती हैं। अतः इन प्रदेशों के निवासी व्यापार के लिये थोड़ी ही मात्रा में वस्तु प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापार की सुविधाएँ इतनी न थीं, अतः कोई उन्नतिशील व्यापार न हो सका। व्यापार को आवागमन के साधनों का उपफल ही समझना चाहिये अथवा व्यापार के कारण ही इन साधनों की उन्नति हुई। सम्भवतः कारण एवं प्रभाव ही भिन्न-भिन्न दशाओं में इस बात के लिये उत्तरदायी हैं।

भिन्न-भिन्न मनुष्यों के समुदाय भिन्न-भिन्न वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं और इन्हीं वस्तुओं के अपनी आवश्यकतानुसार आदान-प्रदान करने के कारण व्यापार की उत्पत्ति होती है। इस भिन्न-भिन्न उत्पादन के तीन मुख्य कारण हैं :—

(१) मनुष्यों की प्रवृत्ति की भिन्नता, (२) औद्योगिक विकास की दशाओं में भिन्नता और (३) उनके भिन्न-भिन्न भूमि की उत्पादन संबंधी साधनों की भिन्नता।

यद्यपि मनुष्य और उनका वातावरण दोनों ही परिवर्तनशील हैं फिर भ प्रकृति मनुष्य की अपेक्षा अधिक स्थायी है। संसार के भविष्य के व्यापार से ऐस अनुमान किया गया है कि वातावरण सम्बन्धी एवं साधन सम्बन्धी दशाएँ भिन्न-भिन्न राष्ट्रों एवं प्रदेशों में मानव भिन्नताओं की अपेक्षा व्यापर के लिये अधिक स्थायी हैं भौतिक भिन्नताएँ व्यापार के लिये क्षेत्र प्रदान करती हैं जो कि उस व्यापार से कहीं अधिक इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं जो कि जातीय सभ्यता एवं निपुणताओं पर निर्भर हैं। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि मानव भिन्नताएँ प्रायः घटती और विलुप्त हो जाती हैं।

खण्ड ६
सेवाएँ व्यक्तिगत एवं लोक सम्बन्धी

व्यावसायिक अथवा लौकिक सेवाओं के लिये एक विशेष प्रकार के शिक्षण या लौकिक विश्वास की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में वैज्ञानिक, इंजीनियर, शिक्षक,

सोना प्राप्त करने में लगा है। इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि बहुत से राष्ट्रों का गौरव सोने पर ही टिका हुआ है परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि स्वर्ण किसी देश के पतन का कारण भी हो सकता है।

स्वर्ण

वितरण--सन् १९४१ में फिलीपाइन्स और अलास्का दोनों ने मिलकर संसार की समस्त उत्पत्ति का ४३ प्रतिशत सोना उत्पन्न किया। फिलीपाइन्स में यातायात की कमी, चट्टानों के बोझ और घने वनों ने सोना खोदने में बहुत बड़ी बाधाएँ उपस्थित कर दी हैं। यहाँ पर सबसे पुराना और अधिक सोना उत्पन्न करने वाला जिला वागियों के बिल्कुल निकट पर्वतीय प्रान्त उत्तरी लूजौन में है। दूसरा सोना उत्पन्न करने वाला भाग मासवती टापू पर पाया जाता है।

अलास्का में कुल सोने (Placer gold) का ३/४ भाग फेयर बंक्स, साकल, तथा हाट स्प्रिंग और यूकान की घाटी के अन्य प्रदेशों से प्राप्त किया जाता है। कुछ सोने (Lode Gold) का ३/४ भाग जूनो केशकन तथा अन्य दक्षिणी पूर्वी अलास्का के खान खोदने वाले केन्द्रों से प्राप्त किया ज ता है। सोने की उत्पत्ति ने विदेशों में रहने वाले मनुष्यों के ध्यान को आकर्षित किया। इसके परिणाम स्वरूप कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और ब्रिटेन से आकर लोग यहाँ बसने लगे।

चित्र ३०
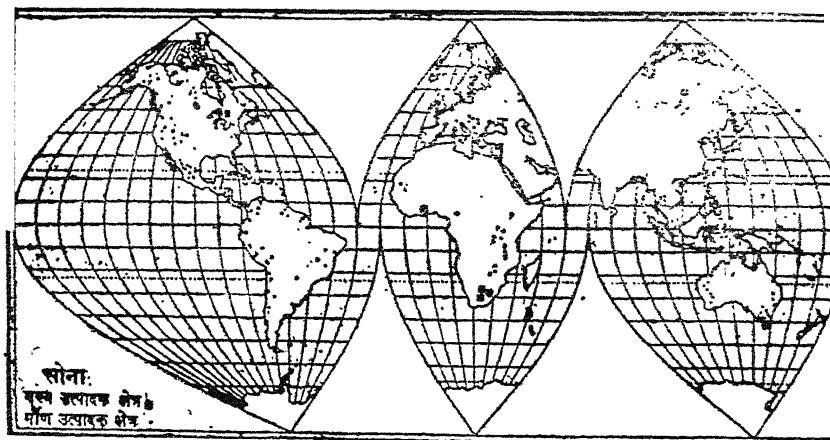
दक्षिणी अफ्रीका में सन् १८८४ ई० में ट्रान्सवाल नामक जिले में सर्व प्रथम सोने की खोज हुई। बोअर युद्ध के कारण १८९९-१९०२ तक सोने की खुदाई में लगी हुई मशीनों का प्रयोग कम कर दिया गया, इसके परिणाम स्वरूप उत्पत्ति घट गई। रैंड जिला एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ ५० मील लम्बा और कुछ ही मील चौड़ा क्षेत्र जोहन्सवर्ग नगर को घेरे हुए है। निःसन्देह संसार में यह सबसे बड़ा स्वर्ण क्षेत्र है। सन् १९४० में दक्षिण अफ्रीका के संघ ने संसार की उत्पत्ति का $\frac{1}{3}$ भाग से अधिक सोना उत्पन्न किया।

तत्पश्चात् रूस और आस्ट्रेलिया का नम्बर आता है। सन् १९३४ ई० में संसार के समस्त स्वर्ण उत्पादक राष्ट्रों में रूस को द्वितीय स्थान प्राप्त था। द्वितीय महायुद्ध के समय उत्तरी साइबेरिया के आल्डन और कोलोमा नदियों के बेसिन प्रमुख क्षेत्र थे। आस्ट्रेलिया संसार के स्वर्ण उत्पादक राष्ट्रों में पाँचवाँ स्थान ग्रहण करता है। सन् १९४० में संयुक्त राष्ट्र अमरीका की उत्पत्ति का $\frac{1}{40}$ भाग सोना आस्ट्रेलिया में खोदा गया था। आस्ट्रेलिया के अन्तर्गत एक खान के बाद दूसरी अधिक सम्पन्न स्वर्ण-खान की प्राप्ति इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है। बलरात और बेन्डोगो, 'विक्टोरिया माउन्ट मारगन' क्वीन्सलैण्ड, किंबर्ले, कूलगार्डी तथा काल-गूर्ली स्वर्ण उत्पादक क्षेत्र हैं।

पश्चिमी अमरीका के पर्वत, जो संयुक्त राष्ट्र अमरीका से चिली तक फैले हुए हैं, सोने और चाँदी से भरे हैं। पीरू, मैक्सिको तथा अमरीका के अन्य देशों में स्पेन निवासी अधिक परिमाण में सोना निकालते हैं।

चाँदी

चाँदी सोने की अपेक्षा अधिक और सस्ती है। इसका प्रयोग उद्योग-धन्धों में भिन्न प्रकार से होता है। सन् १९०१ से १९४० तक केवल संयुक्त राष्ट्र अमरीका में चाँदी का उपभोग १२,९००,००० से बढ़कर ७२,४००,००० औंस हो गया था। चाँदी का सबसे अधिक प्रयोग फोटोग्राफिक इन्डस्ट्रीज, इलेक्ट्रोप्लेटिंग इन्डस्ट्रीज तथा जवाहिरात के कारोबार में होता है। चाँदी से नाना प्रकार के आभूषण, वस्तुएँ तथा रसायनिक उद्योगों के लिये बहुत सी वस्तुएँ बनायी जाती हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय इसका प्रयोग सोल्डर (solder) तथा मिश्रित धातु के बनाने में होता था। उद्योग-धन्धों में प्रयोग किये जाने के अतिरिक्त इसका प्रयोग द्रव्य-भण्डार तथा गौण मुद्रा के रूप में भी होता है।
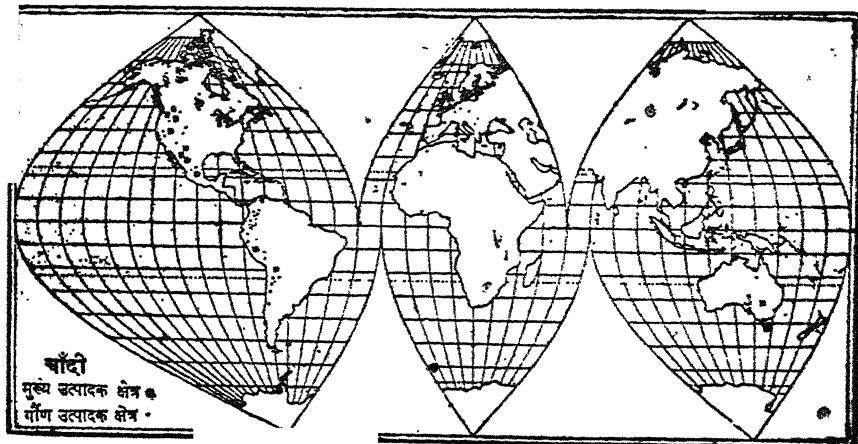
चित्र ३१

वितरण—मैक्सिको संसार का सबसे बड़ा रजत उत्पादक राष्ट्र है। सन् १६-४१ में इसकी उत्पत्ति समस्त संसार की पूर्ति की ३० प्रतिशत थी। राष्ट्र का सबसे बड़ा रजत कोष पाशुवा क्षेत्र में है। यह कोष शताब्दियों से खोदे जा रहे हैं और आज भीहोलगे प्रान्त की अपेक्षा अधिक चाँदी उत्पन्न करते हैं।

मैक्सिको के बाद संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इड़ाहो रजत उत्पादक प्रान्तों में द्वितीय है। इसके पश्चात् यूटाह, मांटना और अरीजोना का नाम आता है।

तत्पश्चात् कनाडा, पीरू और आस्ट्रेलिया रजत उत्पादन में प्रमुख स्थान रखते हैं।

प्लैटिनम

संसार में प्लैटिनम धातु का अभाव है। यह एक कड़ी धातु है। वायु, अम्ल तथा ऊँचे तापक्रम का प्रभाव इस धातु पर बहुत कम पड़ता है। विज्ञान सम्बन्धी कार्य तथा जवाहरात के निर्माण में इसका प्रयोग बड़ा महत्वपूर्ण है। प्लैटिनम रूस में यूराल पर्वत से प्राप्त किया जाता था परन्तु अब यहाँ पर इस धातु का अभाव है। है। यह धातु अब कनाडा, कोलम्बिया, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और दक्षिणी अफ्रीका से प्राप्त की जाती है। पूर्ति के अभाव एवं माँग की वृद्धि ने प्लैटिनम को सोने की अपेक्षा अधिक बहुमूल्य बना दिया है।
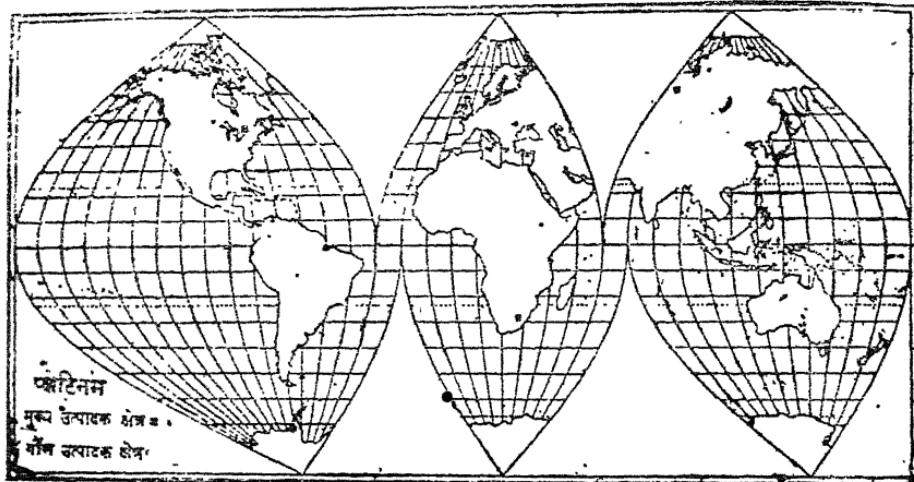
चित्र ३२

बहुमूल्य पाषाण—स्वर्ण एवं रजत दोनों मानव क्रियाओं तथा मानव-वितरण को अधिक मात्रा में प्रभावित करते हैं। भारतवर्ष में हीरा conglomerate
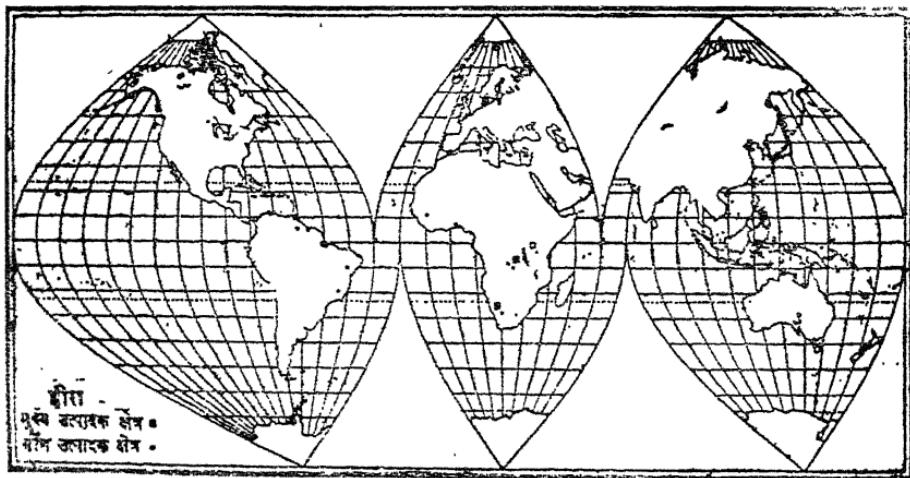
चित्र ३३

मिट्टी से प्राप्त किया जाता था। आधुनिक काल में संसार की पूर्ति का अधिकांश दक्षिणी अफ्रीका द्वारा प्राप्त किया जाता है। किंबर्ले में संसार की पूर्ति का अधिकांश

दक्षिणी अफ्रीका द्वारा प्राप्त किया जाता है। किंबर्ले में हीरे की खुदाई सन् १८७० में प्रारम्भ हुई। ये आग्नेय चट्टानों (igneous rocks) में पाये जाते हैं। इस प्रकार की खुदाई में अधिक पूँजी एवं श्रम की आवश्यकता होती है। ये बहुमूल्य प्रस्तर नामाकुआ लैण्ड और लिशेनबर्ग जिले की नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से प्राप्त किया जाता है। सरलता-पूर्वक प्राप्ति तथा हीरों की अधिकता का किम्बर्ले की खान पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। हीरा बेल्जियम कांगो, दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका, गोल्ड कोस्ट और ब्रिटिश गयाना में प्राप्त होता। छोटे आकार के कृत्रिम हीरे का निर्माण दुष्कर सा प्रतीत होता है। अन्य बहुमूल्य प्रस्तरों का भौगोलिक महत्व बहुत कम है। उनका नाम तथा वितरण निम्नांकित है। ओपल्स Opals) क्वीन्सलैंड में एमरल्ड्स कोलम्बिया में रूबजि, ऊपरी बर्मा और सफ़र लंका में पाये जाते हैं।

लोहे का महत्व (The Role of Iron)

विषय-प्रवेश—Russel Smith के अनुसार "The modern machine age in which we live, is essentially an age of iron and steel." यदि संसार की समस्त स्वर्ण एवं रजत राशि नष्ट कर दी जाय तो मनुष्य की क्रियाओं में कोई विशेष परिवर्तन न दिखाई देगा किन्तु यदि लोहा संसार के समस्त देशों से निकाल दिया जाय तो कुछ ही दिनों के पश्चात् हमारी जीवन-प्रणाली इतनी साधारण हो जायगी कि इसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। लोहे के विस्तृत प्रयोग का कारण यह है कि यह संसार के सभी भागों में पाया जाता है। यह एक साधारण धातु नहीं है और इसका कच्चे लोहे से प्राप्त करना भी सरल कार्य नहीं है। लोहा पृथ्वी के ४.६% अल्युमीनियम ८.२% कैल्शियम ३.५% मैगनेशियम २.६% सोडियम २.६% और पोटैशियम २.४%भाग का निर्माण करते हैं। किन्तु लोहा प्रयोग के दृष्टिकोण से सब को मात कर देता है।

*Russel Smith ने लिखा है "Because of its hardness, strength and durability, because of the ease with which it ean be cast and worsted into any desired shape, and because of its remarkable cheapness under modern methods of production, iron is the most important and widely used metal in the service of man of today."

---

*Russel Smith—"Industrial and Commercial Geography."

लोहे और स्पात् (Steel) से असंख्य मशीनों का निर्माण हुआ जिनके द्वारा मानव-श्रम को अधिक प्रोत्साहन मिला। मशीन कच्चे माल के रूप में परिवर्तन लाकर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। मशीन मनुष्य, माल तथा विचारों का वहन करती है। मशीन खेत जोतती है, बोती है तथा फसल को काटती है। मशीनें वस्तुओं का निर्माण करती हैं। यह नियन्त्रण स्थापित कर सकती हैं, अनुमान लगा सकती हैं और लगभग सोच-विचार भी सकती हैं। एक मशीन दूसरी मशीन का निर्माण करती है। मशीन के न होने पर समस्त श्रम श्रमिक के कन्धों पर आ जाता है। लोहे की अनुपस्थिति में आधुनिक युग में इस मशीन पर टिकी हुई सभ्यता थोड़े ही दिनों में अवनति के गर्त में चली जायगी। इसका परिणाम यह होगा कि लाखों भूखों मरने लगेंगे। कोयला आधुनिक काल की गति प्रदान करता है और लोहा तथा स्पात (Steel) औद्योगिक उन्नति में महान् सहयोग देते हैं। इस प्रकार कोयला और लोहा आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के दो स्तम्भ हैं। इनके न होने पर सभ्यता के शिविर का स्थायी रहना असम्भव सा प्रतीत होने लगेगा। इसी भाव को Russel Smith महोदय इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

"Verily coal and iron are twin pillars of physical strength underlying the civilization of today,"

कच्चे लोहे की किस्में

बढ़िया कच्चा लोहा (Iron ore) वही होता है जिसमें लोहे की मात्रा अधिक हो। जितनी ही लोहे की मात्रा अधिक होगी उतने ही अच्छे किस्म का लोहा प्राप्त होगा। लोहे की मात्रा के आधार पर हम कच्चे लोहे (iron ore) को चार भागों में विभाजित करते हैं :—

(१) **हेमेटाइट** (Hematite —कच्चे लोहों में हेमेटाइट सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस धातु में शुद्ध लोहे की मात्रा ७० प्रतिशत होती है और अन्य अशुद्ध पदार्थ २० प्रतिशत होते हैं। यह लोहा रंग में बहुधा लाल या भूरा होता है।

(२) **मैगनेटाइट** (Magnetite)—मैगनेटाइट आइरन और (Magnetite Iron ore) को द्वितीय स्थान प्राप्त है। इसका रंग काला और भूरा तथा हरा एवं काला होता है। इसमें शुद्ध लोहे की मात्रा ७०-७५ प्रतिशत है परन्तु बहुधा यह मात्रा ६०-६५ प्रतिशत के बीच ही होती है।

(३) **लीमोनाइट** (Limonite)—इसका रंग पीला तथा काला होता है। जब वह शुद्ध होता है तो इसमें ६० प्रतिशत शुद्ध लोहा पाया जाता है।

(४) **सीडेराइट** (Sederite)—यह लोहा कार्बन तथा ओषजन (Oxygen) को अपने में धारण करता है। शुद्ध सीडेराइट ४८ प्रतिशत खनिज पदार्थ ग्रहण करता है परन्तु बहुत सी अशुद्धियों के कारण शुद्ध धातु की यह मात्रा घटकर ३५ प्रतिशत ही रह जाती है।

आदि कालीन कच्चा लोहा

संसार के किसी क्षेत्र में कितना लोहा प्रयोग किया जाता है यह उसकी सभ्यता का द्योतक है। यद्यपि मिश्र, इजरायल मेसोपाटामिया, ग्रीस और रोम की प्राचीन उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई सभ्यता का आधार आज से पूर्ण रूपेण भिन्न था क्योंकि उन राष्ट्रों में लोहा का प्रयोग बहुत थोड़ा होता था। तत्कालीन सभ्यता के अंग जैसे कला, साहित्य, दर्शन शास्त्र, धर्म और संस्कार में खनिज पदार्थों को बहुत थोड़ा महत्व प्राप्त था। उद्योग-धन्धे, यातायात, वाणिज्य एवं खान खोदने में भी बहुत थोड़ी उन्नति हुई थी। इन दिशाओं में कल के अभाव के कारण गति अवरुद्ध सी थी। इस अन्तर का मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि लोहा, लकड़ी, कोयला और कल शक्ति की उन्नति नहीं हुई थी। धीरे-धीरे सभ्यता उत्तर-पश्चिम दिशा में उत्तरी सागर के निकटवर्ती देशों की ओर बढ़ी। अब प्रश्न यह उठता है कि सभ्यता का विकास बहुत पहले क्यों नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण कच्चे लोहे, कोयले और जलशक्ति के सस्ते साधनों का अभाव था।

मिश्र, मेसोपोटामिया, उत्तरी भारत, पूर्वी चीन जहाँ संसार की आदि सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ था वहाँ लोहा बहुत थोड़े ही अंश में प्राप्त होता है। सीरिया और ग्रीस में भी यद्यपि चूने की चट्टानें पायी जाती हैं परन्तु लोहे जैसे खनिज पदार्थ का अभाव है। इटली में भी केवल थोड़ा ही लोहा प्राप्त होता है और जो कुछ भी लोहा प्राप्य है वह एल्बा द्वीप से प्राप्त होता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समस्त प्राचीन समृद्ध देशों में लोहे और कोयले का अभाव था। केवल चीन ही एक ऐसा देश है जो अपवाद हो सकता है। आदि कालीन सभ्य मनुष्य लोहे से चाकू, फावड़ा और हथियार बनाते थे। ईसामसीह के पहले अलेक्जण्डरिया के हीरो (Hero) महोदय ने भाप से चलने वाले इंजिन का आविष्कार किया था और करघे जो उस समय प्रयोग में थे उनका भी आविष्कार हो चुका था, परन्तु लोहे के अभाव के कारण इनका प्रयोग विस्तृत न हो सका।

इसके प्रतिकूल आधुनिक सभ्यता इन्हीं क्षेत्रों में केन्द्रित है जहाँ लोहा तथा कोयला प्राप्य हैं। सबसे अधिक शक्तिशाली जातियाँ उत्तरी स्पेन, फ्रांस, बेल्जियम,

जर्मनी, इंगलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और स्वीडन, जिनमें लोहा और वन का बाहुल्य है, पाई जाती हैं।

संसार के कच्चे लोहे (Iron ore) और पिग आयरन की उत्पत्ति
(करोड़ टनों में)*

देश	कच्चा लोहा १६५०	पिग आइरन १६५०
(१) संयुक्त राष्ट्र अमरीका	६८.१६	५६.३
(२) रूस	४४	१६.२
(३) फ्रांस	२६.५०	७.६
(४) ब्रिटेन	१२.६४	६.६
(५) स्वीडन	१३.३६	३.६
(६) पश्चिमी जर्मनी	११.०३	६.६
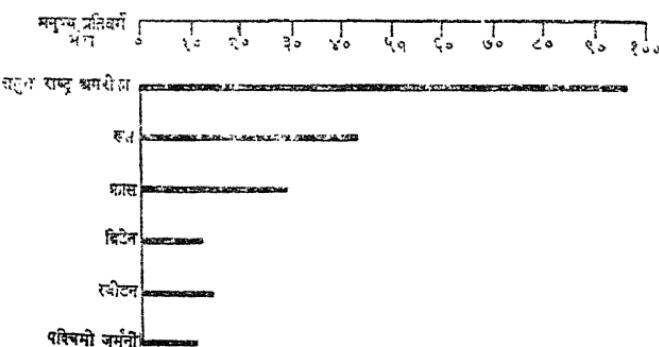
चित्र ३४

युक्त राष्ट्र अमरीका में कच्चे लोहे का वितरण

(१) उत्तरी-पूर्वी प्रदेश—इस प्रदेश में अडिरनडाक्स (न्यूइंगलैंड) और कार्नवाल (पेन्सलवानिया) कच्चा लोहा उत्पन्न करने वाले दो प्रमुख प्रान्त हैं। इस प्रदेश की उत्पत्ति ४ करोड़ टन प्रति वर्ष है।

(२) दक्षिणी-पूर्वी प्रदेश—बरमिंघम, अलाबामा, चालानूगा और टेनीसी

*छै प्रधान देशों की उत्पादन २०६.०२ करोड़ टन
संसार की उत्पत्ति का योग २४५.०७ करोड़ टन

इस प्रदेश के प्रमुख क्षेत्र में है। इस प्रदेश की वार्षिक उत्पत्ति ६ से ८ करोड़ तक है। हेमैटाइट इस क्षेत्र का प्रधान लोहा है।

(३) सुपीरियर झील के निकटवर्ती प्रान्त—यह प्रदेश मिशिगन, उत्तरी विसकानसिन और उत्तरी पूर्वी मिनिसोत में फैला हुआ है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका का ८५% लोहा इसी क्षेत्र से प्राप्त किया जाता है। यहाँ पर उच्च श्रेणी का हेमेटाइट प्राप्त होता है, मेसाबो, वरमिलियन, क्यूना, मिनीसोय, गाजविक, मारक्विटी और विसकान्सिन तथा मिशिगन की मिनामिनी श्रेणियों से हेमैटाइट लोहा प्राप्त किया जाता है। १६४८ में मेसाबी श्रेणी से ८३.५ करोड़ टन लोहा खोदा गया था। यह सब श्रेणियों में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है और संयुक्त राष्ट्र अमरीका की कुल उत्पत्ति का ६५ प्रतिशत लोहा इस श्रेणी से खोदा जाता है।

(४) पश्चिमी प्रदेश—राकी पर्वत से लेकर प्रशान्त महासागर के तटवर्ती प्रदेश जैसे यूटाह, वियोमिंग, कैलीफोर्निया और नेवादा में पाया लोहा जाता है। सन् १६२० में संयुक्त राष्ट्र अमरीका की कुल उत्पत्ति ६० करोड़ टन थी तत्पश्चात् यह उत्पत्ति घटकर ४० करोड़ टन हो गई है। सन् १६४०-४५ में यह उत्पत्ति बढ़कर १०६ करोड़ टन हो गई। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में कुल उत्पत्ति का ६२ प्रतिशत हेमैटाइट, ६ प्रतिशत मैगनेटाइट और १.५ प्रतिशत लिमोनाइट प्राप्त होता है। सेडराइट का सर्वथा अभाव है।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अतिरिक्त क्यूबा, मैक्सिको, न्यूफाउन्डलैण्ड और कनाडा में लोहा खोदा जाता है। सन् १६४६ में क्यूबा में १५६ हजार मेट्रिक टन, मैक्सिको में २७५ हजार मेट्रिक टन और कनाडा में १.४३ करोड़ मैट्रिक टन लोहा उत्पन्न किया गया था।

दक्षिणी अमरीका—दक्षिणी अमरीका में केवल चिली और ब्राजील में कच्चा लोहा खोदा जाता है। ये दोनों प्रदेश उच्च कोटि का लोहा पैदा करते हैं। ब्राजील का समस्त रिजर्व ३ मिलियन टन है। इसका अधिकांश लोहा यूरोप और उत्तरी अमरीका को भेजा जाता है। चिली का अधिकांश लोहा यलटोफो में खोदा जाता है।

अफ्रीका

अफ्रीका में तीन मुख्य क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ लोहे का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है। ये निम्नांकित हैं :—

(१) उत्तरी अफ्रीका

(२) मध्य अफ्रीका

(३) दक्षिणी अफ्रीका

उत्तरी अफ्रीका में ट्यूनीसिया, अल्जीरिया, स्पेन और फ्रेंच मोरक्को हैं। इन क्षेत्रों की कुल उत्पत्ति सन् १९४६ में २.७५ करोड़ मीट्रिक टन थी। इसका अधिकांश पश्चिमी यूरोप को भेज दिया गया था। मध्य अफ्रीका में जो लोहा खोदा जाता है उसमें लोहे की मात्रा (Iron content) २० से ३० प्रतिशत तक होती है। दक्षिणी अफ्रीका में ट्रान्सवाल से प्राप्त लोहे में ५० से ६० प्रतिशत प्राप्त किया जाता है।

एशिया—एशिया महाद्वीप में लोहे के क्षेत्र बिखरे हुए हैं। जापान में लोहे की उत्पत्ति दिन प्रतिदिन घटती जा रही है। युद्ध के समय जापान के लोहे और स्पात के उद्योग-धन्धे में युद्ध के पहले की अपेक्षा चार या पाँच गुनी वृद्धि हुई। जापान में उत्तरी चीन, मलाया प्रायद्वीप और फिलीपाइन द्वीप से लोहा आयात होता है। फिलीपाइन का भविष्य उज्ज्वल है। सन् १९४० में इसकी समस्त उत्पत्ति १.२ करोड़ टन थी।

भारतवर्ष में उच्चकोटि का लोहा पाया जाता है। बिहार और उड़ीसा प्रान्त में अधिक लोहा खोदा जाता है। काली माटी और टाटानगर प्रधान केन्द्र हैं। भारतवर्ष जापान को लोहा निर्यात करता है। चीन में यांगटिसीक्याँग के पश्चिमी भाग में लोहे के क्षेत्र बिखरे हुए हैं, सन् १९४२-४३ चीन में १५ करोड़ टन लोहा खोदा गया था।

आस्ट्रेलिया तथा ओसीनिया

आस्ट्रेलिया में निम्नकोटि का मैगनेटाइट लोहा दक्षिणी आस्ट्रेलिया और न्यूसाउथ वेल्स में खोदा जाता है। सन् १९४५ में कुल उत्पत्ति १.३६ करोड़ मिट्रिक टन थी। दोनों क्षेत्रों में उन्नति धीरे-धीरे हो रही है क्योंकि निकट में खपत के लिए बाजार का अभाव है।

यूरोप

संसार में पाँच क्षेत्र ऐसे हैं जो दुनियाँ की उत्पत्ति का $\frac{3}{4}$ भाग उत्पन्न करते हैं। ये निम्नांकित हैं:—

(१) सुपीरियर झील के निकटवर्ती प्रदेश

(२) फ्रांस का लोरेन प्रदेश

(३) रूस का क्रिवायराग क्षेत्र
(४) उत्तरी स्वडेन का किरूना प्रान्त और
(५) अलाबामा का बरमिंघम प्रान्त

इनमें से दो क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अन्तरगत हैं और तीन यूरोप के।

कच्चे लोहे का भविष्य (Future of the Iron Ore)

लोहे की सफल खुदाई उसके औजारों पर निर्भर है। इसके लिये राष्ट्रीय यता की भी आवश्यकता होती है। सुपीरियर झील के निकटवर्ती प्रदेश में उच्च टे का लोहा यूरोप की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। साधारण कोटि के लोहे की उत्पत्ति में ह्रास दीखता है और इसके साथ ही साथ खुदाई में भी अधिक रुपया खर्च होने लगा है। आधुनिक काल में भट्ठियों, मशीनों और औजारों के प्रयोग
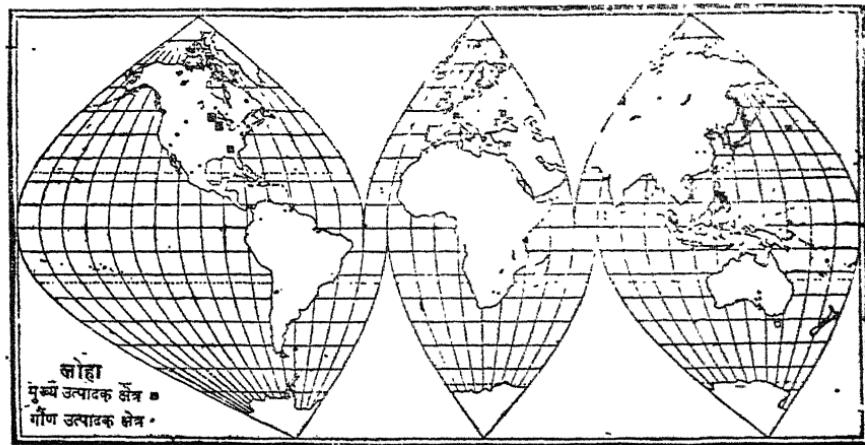
चित्र ३५

ने लोहे और स्पात के उद्योग-धन्धे की महान उन्नति में अधिक सहयोग प्रदान किया है।

ताँबा

मनुष्य बहुत प्राचीन काल से ताँबे का प्रयोग करते आये हैं। इलेक्ट्रिक डाइनमों के आविष्कार तथा प्रयोग के साथ-साथ इसका महत्व बढ़ गया है। ताँबा बिजली का उत्तम संचालक है। इससे सरलतापूर्वक पतले तार बनाये जा सकते हैं।

ताँबा विद्युत के पैदा करने तथा विद्युत शक्ति के प्रयोग में काम आता है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जितना ताँबे का उपयोग होता है उसका आधा भाग विद्युत के प्रयोग में आता है, वल्व, मेकैनिकल रिफ्रिज-रेशमी, एयर कण्डीशनिंग आपरेटस, टेलीग्राफ, टेलीफोन, रेडियो, बिजली से चलने वाली गाड़ियाँ, रेलवे सिगनल इन सभी में बिजली ताँबे की सहायता से दौड़ाई जाती है।

ताम्र-इतिहास—आज से ७००० वर्ष पूर्व ताँबे का प्रयोग होता था। नूतन पाषाण युग के मनुष्यों ने यह पता लगाया कि लाल रंग की धातु में कुछ विशेष गुण होते हैं जो कि काष्ठ, हड्डी और प्रस्तर में नहीं पाये जाते। उनका कथन
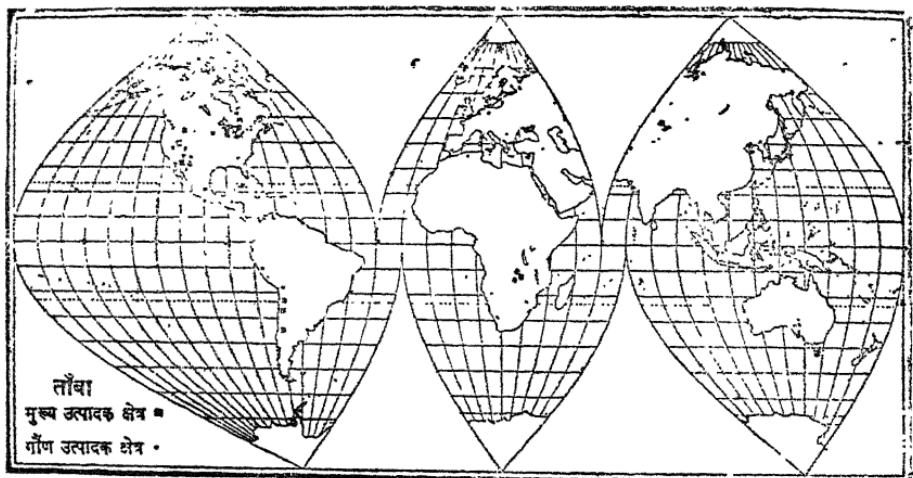
चित्र ३६

था कि यह सख्त किया जा सकता है और हथौड़े द्वारा पीट कर इसमें फल निकाला जा सकता है। यह धातु कम गर्मी पहुँचायी जाने पर भी पिघल जाती है। ऐसा प्राचीनकाल के निवासियों ने पता लगाया था। तत्पश्चात् यह पता चला कि काँसे के बनाने में ताँबा बड़ी आसानी से टीन में मिलाया जा सकता है और पीतल बनाने के लिये जस्ते में। काँसे और पीतल दोनों ताँबा की अपेक्षा अधिक दिन चल सकते हैं। काँसा कई प्रकार से मानव के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। पाषाण युग के मनुष्यों की सभ्यता में विकास हुआ और धीरे-धीरे उन्होंने सभ्यता को अपनाया। किसी को यह पता नहीं लगा कि ताँबा कब और कहाँ सर्व प्रथम प्रयोग में आया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ४००० ईसा सम्वत् पूर्व मेसोपोटामिया और मिश्र में लोहे

संसार की कुल उत्पत्ति का ६०% से अधिक मैंगनीज आइरन एण्ड स्टील इन्डस्ट्रीज (Iron and Steel Industries) के काम में आता है।

वितरण—सबसे अधिक मैंगनीज रूस में पायी जाती है। इस धातु ने रूस के नूतन उद्योग-धन्धों के निर्माण में अत्यधिक सहयोग दिया है। सबसे अधिक मैंगनीज यूराल पर्वत से प्राप्त की जाती है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त कीवाय राग रूस का मैंगनीज उत्पादक क्षेत्र है। रूस के बाद दूसरा नम्बर भारतवर्ष का आता है। सन् १६२६ से १६३३ तक भारतवर्ष में इसका कुल उत्पादन २'७६ मिलियन टन था जिसका २'७२ मिलियन टन निर्यात किया गया। भारतवर्ष में मैंगनीज की उत्पत्ति का ह्रास हो रहा है।

अध्याय ६

शक्ति के स्रोत

(Sources of Power)

शक्ति का इतिहास—मानव-भूगोल के अध्ययन का मुख्य अंग मनुष्य है। आदि काल से लेकर अब तक उसने उद्योग-धन्धों, व्यापार एवं यातायात के साधनों में आशातीत उन्नति की है। यदि हम मानव-सभ्यता के विकास पर दृष्टिपात करें तो हमें विदित होता है कि सभ्यता की उन्नति शक्ति के क्रमिक विकास पर आधारित रही है। यन्त्र वेत्ता की भाषा में 'शक्ति' (Power) शब्द का अर्थ उस शक्ति से है जिस पर मनुष्य का अधिकार है और जो यन्त्र सम्पादित कार्यों के लिये प्राप्य है। आधुनिक समय में शक्ति के प्रमुख स्रोत ये हैं—मनुष्य और पशु की मांशपेशियों की शक्ति, वायु की गतिज शक्ति, ऊँचे स्थानों के जल की स्थितिज शक्ति, लकड़ी, कोयला और तेल के जलाने से प्राप्त शक्ति, प्राकृतिक गैस, एलकोहल, सूर्यशक्ति, अणुशक्ति इत्यादि। शक्ति का सबसे प्राचीन स्रोत मनुष्य है। अपनी जंगली अवस्था में उसे अपने शारीरिक बल का ही भरोसा था और वह समस्त कार्य स्वयं करता था। मानव शक्ति का प्रथम सम्वर्धन पालतू पशुओं के प्रयोग से प्रारम्भ होता है। सभी प्राप्य प्रमाण इस विचार की पुष्टि करते हैं कि प्रागैतिहासिक काल में स्त्रियों ने पौधों एवं पशुओं को पालतू बनाया था। परन्तु दैनिक कार्यों में पशु शक्ति का प्रयोग बहुत कम ही रहा और मनुष्य को अपने जीविकोपार्जन के कार्यों में बहुत सीमा तक अपने शारीरिक बल पर ही निर्भर रहना पड़ा। तत्पश्चात् मनुष्य का ध्यान वायु और बहते हुए जल की ओर आकर्षित हुआ। यद्यपि वायुशक्ति का प्रयोग जलपोतों में बहुत पहिले से प्रारम्भ हो गया था, तथापि पवन चक्कियों का प्रयोग बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। ग्रीस में पनचक्कियों का प्रयोग प्राचीन समय में होता था परन्तु उनकी शक्ति बहुत कम थी और अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक उनका कोई महत्व न था।

प्रथम ताप संचालित यंत्र तोप थी जिसका प्रयोग तेरहवीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हुआ। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में ताप-इञ्जन बनने प्रारम्भ हुए जिनका प्रयोग खानों से पानी निकालने के लिये होता था। सन् १७८२ ईसवी में जेम्स वाट (James Watt) नामक एक इंगलिश व्यक्ति ने वाष्प-इञ्जन का निर्माण किया। इसके पश्चात् वाष्प द्वारा चलने वाली कई प्रकार की मशीनें मनुष्य के काम आने लगीं और इस प्रकार औद्योगिक क्रांति का जन्म हुआ। यातायात के साधनों, रेलों एवं जलयानों में वाष्प से चलने वाले इंञ्जनों का भी प्रयोग प्रारम्भ हुआ और काफी मात्रा में कोयला, लकड़ी और तेल शक्ति के काम में आने लगे।

सन् १८२७ ई० में टरबाइन नामक यंत्र (Turbine) के आविष्कार ने शक्ति उत्पादन के क्षेत्र में एक नई उथल-पुथल उपस्थित कर दी। उच्च स्थानस्थ जल की स्थितिज शक्ति का अक्षय भंडार मानव के सामने उपस्थित हुआ। सन् १८६० ई० से अन्तर्प्रज्वलन यंत्र (internal combustion engines) बनने प्रारम्भ हुए जिसके कारण ईंधन शक्ति के प्रमुख स्रोतों के रूप में हमारे सामने आये। इन यंत्रों में पहले कोयला और गैस का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, बाद में १८८३ ई० से गैसोलीन या पैट्रोल भी ईंधन के रूप में प्रयुक्त होने लगे। कहने का तात्पर्य यह है कि इन नवीन आविष्कारों ने सदैव इस बात का प्रयास किया है कि विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ मनुष्य के काम में आने लगें।

सन् १८९० ई० के बाद विद्युत् के प्रयोग में वृद्धि होने के परिणाम स्वरूप शक्ति के केन्द्रों (power centres) की उत्पत्ति हुई। शक्ति स्थानान्तरण में आर्थिक दृष्टिकोण से बिजली का माध्यम बहुत ही उत्तम सिद्ध हुआ है। इसके कारण एक शक्ति केन्द्र की सामर्थ्य सन् १८८६ में १५० कि० वा० से बढ़कर सन् १९०० ई० में ५०० कि० वा० हो गई। आजकल सूर्य शक्ति और अणुशक्ति को भी प्रयोग में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है और आशा है कि भविष्य में मनुष्य के समक्ष शक्ति का नया द्वार खुलेगा। शक्ति विकास का इतिहास इस बात का द्योतक है कि मनुष्य सदैव से शक्ति उत्पादन के मूल्य को कम करने में प्रयत्नशील रहा है।

आजकल का समय यंत्र युग कहा जाता है। इस युग के महत्वपूर्ण शक्ति स्रोत कोयला, जलविद्युत् एवं तेल माने जाते हैं। इनका प्रयोग किसी देश की सभ्यता एवं रहन-सहन के स्तर का मापदण्ड माना जाता है, परन्तु ये शक्ति स्रोत प्राचीन शक्ति स्रोतों के महत्व एवं अस्तित्व को मिटा नहीं सके हैं। मनुष्य, पशु और वायु

संसार के उतने ही महत्वपूर्ण शक्ति स्रोत हैं जितना कोयला, तेल आदि। संसार के टुंड्रा प्रदेशों में कोयला एवं तेल अप्राप्य हैं और यदि मनुष्य इनका प्रयोग वहाँ करना भी चाहे तो भी नहीं कर सकता है क्योंकि हिमाच्छादित धरातल पर स्लेज (Sledge) नामक गाड़ी के अतिरिक्त और किसी भी सवारी का प्रयोग असम्भव है। वायु-शक्ति का प्रयोग अब भी शुष्क प्रदेशों में होता है। इतना ही नहीं इन शक्तियों का प्रयोग उन प्रदेशों में भी हो रहा है जहाँ पर कोयला, विद्युत एवं तेल ने अपना अधिकार जमा रखा है। उष्ण प्रदेश में मनुष्य शक्ति का प्रयोग व महत्व किसी से छिपा नहीं है। वह भारवहन करता है, रिक्शा खींचता है। हमारे देश के करोड़ों किसान भूसे से अन्न अलग करने के लिये वायु पर निर्भर रहते हैं। पाश्चात्य देशों में भी मनुष्यशक्ति के बिना काम चलना असम्भव सा प्रतीत होता है।

शक्ति का आधुनिक महत्व—उन्नीसवीं और बीसवीं शदाब्दी की औद्योगिक सभ्यता सस्ती यांत्रिक शक्ति पर अवलम्बित है। आज के युग में शक्ति के बिना कोई काम नहीं चल सकता है। यदि कोयला, तेल इत्यादि संसार से विलीन हो जायँ तो कदाचित मनुष्य के सारे काम रुक जायँ। संसार का प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी शक्ति का प्रयोग करता है। मिलमालिक को यंत्र चालन, कच्चा माल मँगाने और निर्मित वस्तुओं को बाजार तक भेजने के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। पाश्चात्य देशों के किसानों को खेती में काम आने वाली मशीनों के लिए कोयला और तेल चाहिये। वायुयान, जलयान और रेलों के चलाने के लिये प्रचुर मात्रा में शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि हमारे देश की खेती में शक्ति संचालित यंत्रों का प्रयोग नहीं के बराबर है तथापि किसान विभिन्न शक्तियों का प्रयोग करता है, जैसे निज की शक्ति, पशु, वायु और लकड़ी के कोयले की शक्ति। हमें रात्रि के अन्धकार में प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। देहातों में किरोसीन और शहरों में विद्युत् के बिना एक दिन भी काम नहीं चल सकता। जब कोई मनुष्य अपने घर से बाहर जाता है तो तुरन्त ही किसी न किसी शक्ति का प्रयोग करना शुरू कर देता है। प्रथम वह रिक्सा या ताँगे से स्टेशन जाता है, फिर रेल या मोटर से अपने निर्दिष्ट स्थान को पहुँच जाता है। तात्पर्य यह है कि आजकल की मानवीय सभ्यता शक्ति के विभिन्न स्रोतों पर अवलम्बित है। सबसे अधिक शक्ति का प्रयोग मिलों, यातायात के साधनों और कृषि-कार्यों में होता है।

अध्याय १०

यातायात (Transport)

यातायात का महत्व—आधुनिक सभ्यता उद्योग और व्यापार पर टिकी हुई है। कुछ ही शताब्दियों पूर्व हमारी सभ्यता का आधार केवल कृषि था। प्रत्येक गाँव की आवश्यकताएँ वहाँ पर होने वाली खेती से पूर्ण हो जाती थी। अन्य गाँव से कोई वस्तु मँगाने ये लिए बैलगाड़ी पर्याप्त थी। उद्योग-धन्धों के विकास ने बड़े-बड़े नगरों को जन्म दिया। गाँव और शहर के बीच सम्बन्ध हेतु बैलगाड़ी पर्याप्त न थी। आवश्यकता को आविष्कार की जननी कहा गया है। एक के बाद दूसरे साधनों की खोज हुई और आज हम मोटर, लारी, कार, ट्रक, रेलगाड़ी, जलयान एवं वायुयान के बिना आधुनिक सभ्यता की कल्पना नहीं कर सकते। व्यापार ही आधुनिक विशिष्ट कृषि एवं उद्योग-धन्धों का आधार है। यातायात की सुविधा के बिना हम व्यापार (Trade) की कल्पना नहीं कर सकते। आदिम निवासियों (Primitive Peoples) के जीवन में व्यापार का महत्व बिल्कुल ही नहीं था। उत्पादन के लिए यातायात के सुलभ और सस्ते साधनों का होना परमावश्यक है। निर्मित वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुँचाने और कच्चे माल को कारखानों तक भेजने के लिये यातायात के साधनों की आवश्यकता पड़ती है।

एक कारखाना कच्चे माल का रूप बदल देता है और इस रूप परिवर्तन से उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। ठीक इसी प्रकार यातायात के द्वारा वस्तु का स्थानान्तरण होता है। इस स्थान-परिवर्तन के फलस्वरूप उस वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। वह वस्तु अपने पहले स्थान पर से, जहाँ उसकी आवश्यकता नहीं थी, दूसरे स्थान को भेजी जाती है जहाँ उसकी माँग अत्यधिक है। यातायात का सबसे बड़ा काम यह है, कि वह किसी वस्तु को उसके उत्पत्ति-स्थान से खपन के क्षेत्र तक पहुँचा दे। इस प्रकार स्थानान्तरण से उस वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। यदि वस्तु की अधिकता वाले भाग से कमी वाले भाग तक उसका पहुँचाना असम्भव है तो प्रत्येक भाग को बाध्य होकर उतना ही उत्पन्न करना पड़ेगा जितनी उसे आवश्यकता है न तो कम न अधिक। इस दशा में प्रादेशिक विशेषता नहीं प्राप्त की जा सकती। परन्तु आजकल यातायात की सुविधा के कारण एक भाग किसी वस्तु को आवश्यकता

से अधिक उत्पन्न करता है क्योंकि वहाँ पर उसके उत्पादन की अति अनुकूल दशाएँ उपस्थित हैं और उन वस्तुओं को नहीं पैदा करता जिनके लिए दशाएँ कम अनुकूल हैं। वस्तुओं के स्थानान्तरण के लिए यातायात के सस्ते एवं सुलभ साधनों के बिना हम आर्थिक उन्नति की उच्चतम दशा को नहीं प्राप्त कर सकते। वास्तव में किसी भूभाग के आर्थिक विकास की अवस्था और यातायात में सीधा सम्बन्ध है।

उद्योग-धन्धों एवं व्यापार के लिये अच्छे एवं सस्ते यातायात के साधनों की महती आवश्यकता है। बड़े-बड़े शहरों, जो उद्योग-धन्धों एवं व्यापार के केन्द्र हैं, की स्थिति-एवं विकास को यातायात के मार्गों ने प्रभावित किया है। रेलयुग के पूर्व शहर नौगमनीय (Navigable) नदियों के किनारे बसते थे। जब से रेलों का विकास हुआ शहर भूभाग के भीतरी स्थानों में बसने लगे। इन केन्द्रों में निर्मित वस्तुओं को दूसरे स्थानों तक पहुँचाने के लिए यातायात के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। शहर में बहुत से आदमी एक ही स्थान में रहते हैं, अतएव उनके खाने-पीने की वस्तुएँ बाहर से आनी चाहिये इसके अतिरिक्त उद्योग-धन्धों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। ये सभी यातायात के सुलभ सस्ते साधनों के बिना सम्भव नहीं हैं।

आर्थिक उन्नति के अतिरिक्त दूसरे दृष्टिकोण से भी यातायात का बहुत महत्व है। भारतवर्ष जैसे विशाल देश में राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लिए यातायात के सुलभ साधनों की उपस्थिति आवश्यक है। देश के विभिन्न प्रान्तों के निवासियों को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए रेलों एवं सड़कों का विकास परमावश्यक है। यातायात के सस्ते एवं अच्छे साधनों के कारण देश के विभिन्न निवासियों में सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और वे एक दूसरे के अधिक निकट आ जाते हैं। यहाँ तक आज हम राष्ट्रीय एकता की ही नहीं वरन् विश्व एकता की भी सोचने लगे है और एक विश्व सरकार की भी स्थापना हमारे ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन बैठी है। मनुष्य ने विज्ञान की सहायता से समय एवं दूरी पर विजय प्राप्त कर ली है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए भी यह आवश्यक है कि देश के सभी भाग एक दूसरे से यातायात द्वारा जुड़े हों।

मनुष्य एवं उसकी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने को यातायात कहते हैं। आजकल यातायात के क्षेत्र में काफी उन्नति हो चुकी है। एक के पश्चात् दूसरे नये साधनों को ढूँढ़ निकाला गया है। इन सभी को निम्नांकित प्रकार से दिखाया जा सकता है।

खण्ड १

मनुष्य—यातायात का प्राचीतम साधन

यदि हम यातायात के विकास पर दृष्टिपात करें तो हमें विदित होता है कि प्रथमतः मनुष्य का शरीर ही यातायात का एक साधन रहा होगा। प्रारम्भ से ही मनुष्य के समक्ष यातायात की समस्या थी और वह उसे सुलझाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा है। इस प्रकार थल यातायात का प्राचीनतम साधन है और आधुनिक युग में भी इस रूप में उसका अस्तित्व सर्वत्र व्याप्त है। इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं कि स्त्री जाति सर्व प्रथम भारवाहिनी के रूप में इस भूतल पर अवतरित हुई। उसका प्रगाढ़ वात्सल्य उसे शिशु को सदैव गोद में लिए रहने के हेतु प्रेरित करता है। आजकल यह प्राचीनतम यातायात पिछड़ी जातियों में प्रायः देखने में आता है। टुण्ड्रा के स्कीमो अमेरिका के भारतीय, चीन निवासियों, न्यूगिनी एवं अण्डमन द्वीपों की जातियों ने बच्चों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने के लिए नाना प्रकार के तरीके ढूँढ़ निकाले हैं। इन जातियों में स्त्री के ऊपर ही सामान ढोने का भार रहता है। पुरुष तो केवल हथियार लेकर चलता है क्योंकि आखेट के समय उसके हाथ में हथियार के अतिरिक्त और कुछ न होना चाहिए। किन्हीं-किन्हीं जातियों में स्त्रियाँ पुरुषों से दुगुना भार लेकर चलती हैं। भारतवर्ष की जंगली जातियों में (जैसे नट, कंजर इत्यादि) भी इस प्रकार के यातायात का प्रचलन रहा है किन्तु अब पशुओं का प्रयोग होने लगा है। प्रत्येक कुटुम्ब के पास एक पशु अवश्य होता है जो पारिवारिक सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता है।

संसार के जिन भागों में प्रकृति मनुष्य से उदासीन है और यातायात के आधुनिक साधन नहीं एकत्र किए जा सकते वहाँ मनुष्य ही यातायात का एक मात्र साधन है। दक्षिणी अमरीका के एन्डीज एवं एशिया के हिमालय पर्वतों में मनुष्य यातायात का प्रमुख साधन है। किन्तु अब खच्चरों का तथा अन्य पशुओं का प्रयोग होने लगा है। भूमध्य रेखीय घने वनों में मनुष्य भारवहन करता है। संसार के जिन भागां की जनसंख्या अत्यधिक है, जैसे चीन, भारत इत्यादि वहाँ मनुष्य यातायात का एक साधन बना हुआ है। इस सम्बन्ध में एक बात का स्मरण हो आता है कि मेरे गाँव से लोग बहँगियों पर दूध कानपुर ले जाया करते हैं।

मनुष्य ने भार को हल्का करने के लिए कई उपाय सोच निकाले हैं। सिर पर बोझ ले जाने वाले किसी न किसी प्रकार की गद्दी (Pad) का प्रयोग करते हैं। सिर की अपेक्षा पीठ पर अधिक बोझ ले जाया जा सकता है। एक लम्बे बाँस के दोनों सिरों पर बोझ लटका कर ले जाना केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु संसार के सभी स्थानों में देखने को मिलेगा।

मनुष्य आज के उन्नतिशील देशों में यातायात का एक सीमित साधन है। वह अपने शरीर का प्रयोग सामान को केवल थोड़ी ही दूर तक ले जाने के लिए करता है। कानपुर शहर के आसपास से घास के बोझ प्रायः मनुष्य के सिर पर ही घासमण्डी तक आते हैं। परन्तु आदिम जातियों में वह यातायात का एक प्रमुख साधन अब भी है।

खण्ड २

पशु –'मूक भार वाहक'

यातायात में सबसे पहिली सहायता मनुष्य को पशुओं से मिली। पशु प्रथमतः दूध, बाल और मांस के लिए पाले गए थे परन्तु बाद में सामान ढोने का कार्य भी उनके मत्थे मढ़ दिया गया। यातायात के काम आने वाले पशुओं का वितरण कई बातों पर निर्भर होता है। जंगली दशा में उनका पाया जाना और बाद के फैलाव ने आधुनिक वितरण को प्रभावित किया है। दूसरे उनके चारे के वितरण औ विभिन्न दशाओं के अनुसार अपने को अनुकूल बनाने की क्षमता पर भी उनका वितरण बहुत कुछ निर्भर है। रेंडियर के बारे में यह कहा जाता है कि जहाँ कोई (Moss) नहीं उगती वह वहाँ नहीं रह सकता। अमरीका के एण्डीज पर पाये

जाने वाला लामा पशु मैदानों में रोगग्रस्त हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक विशेष प्रकार का पशु एक विशिष्ट वातावरण के बाहर नहीं रह सकता।

सम्भवतः कुत्ता सबसे पहिले यातायात के काम में प्रयुक्त हुआ। परन्तु छोटे आकार और सीमित शक्ति के कारण उसका प्रयोग उन्हीं स्थानों में हुआ जहाँ उससे अधिक लाभदायक पशु नहीं मिला। लेकिन टुण्ड्रा के अति शीत प्रदेशों में कुत्ते बड़े काम में आते हैं क्योंकि हल्के होने के कारण वे हिमाच्छादित भूमि पर दौड़ सकते हैं। संसार के दूसरे भागों में अन्य पशुओं के कारण कुत्ते यातायात में बहुत कम प्रयुक्त होते हैं।

भारतवर्ष में यातायात में काम आने वाले पशु दो प्रकार के होते हैं जैसे घोड़ा, गर्दभ, खच्चर, ऊँट और हाथी। दूसरे प्रकार के पशु वे हैं जो किसी न किसी तरह की गाड़ी को खींचते हैं जैसे बैल और भैंसा।

प्राचीन समय में यातायात सम्बन्धी पशुओं में बैल सब जगह पाया जाता था। उत्तरी अमरीका, यूरोप, अफ्रीका और एशिया में कई प्रकार के बैल जंगली अवस्था में पाये जाते थे, यद्यपि अमेरिका में बिसन (Bison) कभी भी पाला नहीं गया। प्रस्तर काल में यूरेशिया में बैल प्रयोग में आता था। यह ठीक कहा नहीं जा सकता कि उसका प्राथमिक प्रयोग मांस के लिए हुआ अथवा यातायात के लिए। मेसोपोटामिया और मिश्र में बैलगाड़ी एक यातायात का साधन थी जैसा कि भूमध्य सागर के आसपास आज भी यह देखने को मिलती है और दक्षिणी अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका में भी यह प्रयोग में आती है। दक्षिणी अफ्रीका में तो बैल सवारी के काम में आता है। भारतवर्ष में बैल की उपयोगिता किसी से छिपी नहीं है। देहात से शहर की ओर आनेवाली बैलगाड़ियों की कतार किसने नहीं देखी है? इतने सारे आधुनिक साधनों के होते हुए भी गाँवों में बैलगाड़ी या भैंसागाड़ी यातायात का एक प्रमुख साधन है। घोड़ा तथा ऊँटों का प्रयोग हमारे देश में बहुत ही कम है। याक हमारे देश के बैल से ही मिलता जुलता एक पशु है जो हिमालय पर्वत पर यातायात का प्रधान साधन है।

घोड़ा आजकल भी जंगली देशों में मध्यवर्ती एशिया में पाया जाता है। ऐसा कथन है कि पालतू घोड़ा यहीं से संसार के अन्य भागों को ले जाया गया था। मध्य-कालीन युग में यूरोप और एशिया के राजनैतिक और सामाजिक इतिहास को इसने अत्यधिक प्रभावित किया था। उस समय रेल और तार नहीं थे और घोड़ा ही दूर

की सवारी का एकमात्र साधन था। युद्ध में हार-जीत कुशल अश्वारोहियों पर बहुत कुछ निर्भर थी।

आज-कल घोड़े सवारी, इक्के, ताँगों और कहीं-कहीं हल खींचने के काम आते हैं। अफ्रीका में घोड़े का प्रयोग नहीं होता। इसका कारण यह है कि उत्तरी भागों में अधिक गर्मी पड़ती है और पानी का अभाव है और मध्यवर्ती भागों में जहरीली टिसीटिसी मक्खी के कारण पशु यातायात सम्भव नहीं।

ध्रुवीय प्रदेशों में रेण्डियर एक उपयोगी पशु है। यह केवल यातायात के ही काम नहीं आता अपितु इससे दूध, मांस और खाल की प्राप्ति होती है। यह पशु बर्फ के अन्दर उगने वाली काई (Reindeer Moss) पर बसर कर लेता है। लैप लैण्ड में पाये जाने वाला रेण्डियर बड़ा शक्तिशाली जानवर होता है। पूर्वी साइबेरिया के रेण्डियर अधिक शक्तिशाली नहीं होते और एक आदमी से अधिक नहीं ले जा सकते। लपलैण्ड के निवासी इस पशुओं का इतना ध्यान रखते हैं कि १३० पौंड से अधिक बोझ उसकी पीठ पर नहीं लादते और १६० पौंड से अधिक स्लेजगाड़ी पर नहीं रखते। रेण्डियर बहुत दूर तक की यात्रा करते हैं। गर्मी की चराई के पश्चात् सर्दी के प्रारम्भ में उनकी दशा काफी अच्छी होती है, तब वे दिन भर १० से १२ मील प्रति घन्टे की चाल से चल सकते हैं। यदि बर्फ काफी पड़ी है और तापक्रम हिमांक से (३०° से ४०°) कम है तो एक अच्छा रेंडियर दिन भर में १५० मील जा सकता है। उत्तरी अमरीका के ध्रुवीय प्रदेश के निवासियों ने इसे काढ़ने का कभी प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में रेंडियर ठंडे-प्रदेशों में यातायात का एक प्रधान साधन है।

ध्रुवीय प्रदेशों के रेण्डियर की भाँति ऊँट गर्म मरुस्थलों का एक महान् उपयोगी पशु है। यातायात की दृष्टि से तो यह इतने महत्व का है कि इसे 'रेगिस्तान का जहाज' कहते हैं। आस्ट्रेलिया के मरुस्थलों की खोज में इसका प्रतिदान बहुत सराहनीय है। ऊँट कंकड़ीली-पथरीली भूमि पर नहीं चल सकता। उसके पैर बहुत मुलायम होते हैं और घोड़े के खुरों की तरह इसके पैर में नालें नहीं लगाई जा सकतीं। परन्तु कभी-कभी उसके पैरों में चमड़ा सिल दिया जाता है। ऊँट हाथी के अतिरिक्त सभी पशुओं से अधिक शक्तिशाली होता है। एक अच्छा सवारी में काम आने वाला ऊँट दिन में १५० मील की यात्रा कर सकता है और बोझा ढोने वाला ऊँट १००० पौंड से अधिक सामान ले जा सकता है।

दक्षिणी अमेरिका के पहाड़ी प्रदेशों में लामा (Llama) और अल्पाका

(Alpaca) यातायात के प्रमुख साधन हैं। इन्हें पर्वतीय ऊँट के नाम से पुकारते हैं। ये पशु केवल पीरू प्रदेश में ही पाये जाते हैं। एण्डीज के पर्वतीय भाग में उनसे बोझा ढोने का काम लिया जाता है। लामा केवल १०० पौंड बोझ ले जा सकता है। आजकल पर्वतीय भागों में खच्चर और गधे लामा के प्रतिद्वन्द्वी बन रहे हैं, फिर भी एण्डीज के पर्वतीय भागों में लामा एक महत्वपूर्ण और उपयोगी पशु है।

हाथी डील-डौल में सबसे बड़ा जानवर है। संसार में इसकी उपयोगिता बहुत ही सीमित है क्योंकि इसे अधिक मात्रा में भोजन चाहिए जो केवल एशिया और अफ्रीका के घने जंगलों में ही सम्भव है। भारतवर्ष में हाथी प्राचीन काल में युद्ध और यातायात के काम आता था। पुराने समय में राजाओं के यहाँ हाथी, घोड़े और पैदल ही सेना के प्रमुख अंग होते थे। हाथी बड़ा शक्तिशाली और बुद्धिमान पशु है। अतः इससे क्रेन (Crane) नामक मशीन (भारोत्तोलन यन्त्र) का काम लिया जाता है। आसाम और ब्रह्मा के घने जंगलों में लकड़ी के व्यवसाय में हाथियों का प्रयोग होता है। वे बड़े-बड़े लट्ठे उठाते हैं और एक स्थान पर एकत्र करते हैं।

खण्ड ३

थल-यानों का विकास

मनुष्य और पशु अपनी पीठ पर भार वहन करते हैं किन्तु उससे कहीं अधिक बोझा वे खींच सकते हैं। इस विचार ने कदाचित गाड़ी के प्राचीनतम स्वरूप को जन्म दिया। प्रथमतः गाड़ी बिना पहिए की होती थी। जहाँ कहीं धरातल पर कर्षण के लिए न्यूनतम बाधाएँ उपस्थित थीं वहाँ किसी न किसी प्रकार की गाड़ी का प्रयोग होता था। यदि ध्रुवीय प्रदेशों की 'स्लेज' गाड़ी को आधुनिक गाड़ियों की अग्रगामिनी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। वे आजकल भी हिम प्रदेशों में बैलगाड़ी या अन्य गाड़ियों के स्थान पर प्रयुक्त होती हैं। ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य एवं पशु भार वहन के प्रमुख साधन हैं परन्तु शीतकाल में जब काफी बर्फ पड़ती है तो स्लेजों का निर्माण किया जाता है और भारी से भारी बोझा ढोया जा सकता है।

बिना पहिए की स्लेज गाड़ी कई प्रकार की होती है। इसके निर्माण में लकड़ी, खाल, ह्वेल मछली की अस्थियाँ और वालरस की आयवरी (Ivory) का प्रयोग होता है। आजकल थोड़ी मात्रा में लोहे का प्रयोग होने लगा है। पश्चिमी स्लेज ३½ से ४ फीट तक लम्बी होती है और पूर्वी क्षेत्रों की स्लेज १२ से २४ फीट लम्बी

होती है। इस पर १००० पौंड तक का बोझा लादा जा सकता है और एक घण्टे में दो मील की चाल से जा सकती है।

पुरानी दुनियाँ की पहियेदार गाड़ी के निर्माण से बहुत पहिले उपर्युक्त प्रकार की गाड़ियों का प्रयोग होता था। हमें इसका ज्ञान नहीं कि पहियेदार गाड़ी का जन्म कब और कहाँ हुआ। फिर भी प्रागैतहासिक काल में इसका जन्म हो चुका था और इतिहास काल के प्रारम्भ में मिश्र, असीरिया और भारतवर्ष में युद्ध के समय रथों का प्रयोग होता था। अमेरिका की खोज के पूर्व वहाँ के निवासी पहियेदार गाड़ी से सर्वथा अनभिज्ञ थे। हमें पहिये के आविष्कार के विषय में ठीक ज्ञान नहीं। प्रथमतः वे ठोस होते थे। परन्तु प्राचीन असीरिया में (Spoked) पहियों का प्रयोग होता था।

पहिए के आविष्कार ने यातायात के विकास में एक महान् उथल-पुथल कर दी। ओटोमोबाइल और रेलगाड़ी यातायात के आधुनिक साधन हैं। इन्हें हम पुरानी गाड़ी के सुधरे हुए रूप कह सकते हैं। वे मनुष्य एवं पशुशक्ति के स्थान पर यान्त्रिक शक्ति के प्रयोग से चलते हैं। इसके कारण चाल और कर्षण शक्ति में वृद्धि हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी में स्थल यातायात के साधनों में द्रुतगति से परिवर्तन हुआ। वाष्प संचालित इंजन के आविष्कार के पूर्व स्थल यातायात के साधन मनुष्य, पशु और बैल या घोड़ा गाड़ी थे जिनकी चाल बहुत कम थी। सन् १८४० के बाद रेल के आविष्कार ने पृथ्वी के कुछ भागों में आशातीत परिवर्तन ला दिया। फिर भी स्थल यातायात के प्राचीन साधन नितान्त आवश्यक हैं और पूर्णरूप से विलीन नहीं हुए हैं। कम समुन्नत प्रदेशों में वे मानव समाज की सेवा में अब भी लगे हुए हैं। अधिक उन्नतिशील देशों में जहाँ जनसंख्या कम है या आधुनिक साधन नहीं एकत्र कये जा सकते वहाँ प्राचीन साधनों का प्रयोग आज कल भी देखने को मिलता है।

खण्ड ४

यातायात—भौतिक रचना और जलवायु

स्थल-मार्गों के वर्णन के पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि हम उन दशाओं पर विचार कर लें जो यातायात के विभिन्न प्रकारों को प्रभावित करती हैं। जैसे-जैसे यातायात के नये तरीकों का विकास होता गया, प्राचीन साधन धीरे-धीरे विलुप्त होते गये। किन्तु यातायात के सभी प्राचीन साधन संसार के किसी न किसी भाग में मिलेंगे।

धनाभाव के कारण नवीन साधनों का विकास भलीभाँति नहीं हो पा रहा है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि उस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर यातायात की कोई मौलिक आवश्यकता नहीं पाई जाती है जो अधिक घने बसे और प्राकृतिक साधनों से भरपूर क्षेत्रों में प्रतीत होती है। यातायात पर भूमि की बनावट एवं जलवायु का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। स्थल यातायात और भौमिक रचना में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मैदान की अपेक्षा पर्वतों पर यातायात अत्यन्त कठिन है। सड़कों और रेलों का निर्माण भूमि के ढाल पर निर्भर है। रेल मार्गों का निर्माण तो केवल अत्यन्त मन्द ढालों पर ही सम्भव है। एक प्रतिशत के ढाल पर (१०० पर १ फीट की चढ़ान) रेल का इंजिन समतल भूमि पर जितना भार खींच सकता है उसका $\frac{1}{2}$ भाग खींच सकता है। उत्तरी अमरीका के राकी पर्वतों को पार करने वाली गाड़ी को २·२ प्रतिशत से अधिक ढाल पर नहीं चढ़ना पड़ता है। पीरू देश की एक रेलवे लाइन में जो १५८०६ फीट की ऊँचाई तक जाती है, ४ प्रतिशत से अधिक ढाल कहीं भी नहीं है।

रेल के इंजन की कर्षण शक्ति भूमि के ढाल पर निर्भर है। अतः सबसे कम ढाल पर रेलमार्ग निर्मित किए गए हैं। रेल मार्ग पर्वतों से दूर भागते हैं और जहाँ कहीं सम्भव है वे मैदान या नदियों की घाटियों से होकर जाते हैं। जिन स्थानों पर पर्वत को पार करना आवश्यक हो जाता है, सुरंगें बनाई जाती हैं। दुनियाँ की २६ लम्बी सुरंगों में १६ सुरंगें आल्पस पर्वत में पाई जाती हैं। बम्बई से पूना जाने वाला रेलमार्ग पश्चिमी घाट को एक सुरंग द्वारा पार करता है।

मोटर गाड़ियों में gearshift करने की क्षमता होती है। अतः वे रेलगाड़ियों से कहीं अधिक ऊँचे ढालों पर चढ़ सकती हैं और पर्वतीय प्रदेशों में जहाँ कहीं रेल मार्ग नहीं बनाये जा सकते, सड़कें आसानी से निर्मित की जा सकती हैं। मनुष्य और पशु खड़े (Steep) ढालों को भी प्रयोग में ला सकते हैं जो ढाल सड़कों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। अतएव संसार के पर्वतीय प्रदेशों में गधा, खच्चर, घोड़ा, लामा (Llama) और याक भारवाही पशुओं को यान्त्रिक शक्ति संचालित यातायात के साधन स्थानान्तरित (Displace or replace) नहीं कर सकते और न भविष्य में कर सकेंगे।

जलवायु और यातायात—भूमि की बनावट जल एवं वायु मार्गों को थोड़े ही अंशों में प्रभावित करती हैं किन्तु जलवायु की दशाएँ जैसे दृश्यता (Visibility), हिमपात, एवं अतिशीत उन्हें प्रभावित किए बिना नहीं रहते। जलवायु यातायात की अवलम्ब-

नीयता (Dependability) और स्थिति की संभावना का निर्धारण करती है। शुष्क प्रदेशों में अन्तर्देशीय (Inland) जल यातायात सम्भव नहीं क्योंकि झीलों और नदियों में बहुत कम पानी रहता है। नील, सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र में शुष्क ऋतु में यातायात बहुत कम हो जाता है, या बन्द हो जाता है जब तक कि इन पर कृत्रिम जलाशय न निर्मित किये जायँ। अत्यन्त शीत भी सफल यातायात के मार्ग में बाधा उपस्थित करती हैं। संसार की बहुत सी नदियाँ जैसे यूकन, मेकेन्जी, यन्सी इत्यादि केवल गर्मी में यातायात के अनुकूल हैं। ग्रेट लेक्स (Great Lakes) का जलमार्ग सर्दी में अवरुद्ध रहता है। उत्तरी और दक्षिणी समुद्र बर्फ के कारण जाड़ों में यातायात के काम के नहीं रहते जैसे आर्कटिक महासागर।

जिस सीमा तक भूमि की बनावट थल मार्गों को प्रभावित करती है उसी सीमा तक जलवायु वायु-मार्गों को। मौसमी दशाएँ वायुयानों के लिए बड़े महत्व की हैं। कोहरा, निचले बादल एवं हिम वर्षा के कारण हवाई अड्डा वायुयान चालक को स्पष्ट लक्षित नहीं होता। उस समय उसे बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता है। लेकिन आजकल रेडियो की सहायता से वायुयान चालक को पहले ही सचेत कर दिया जाता है, कि वह दूसरे खुले हुए हवाई अड्डे पर जाकर उतार दे। कभी-कभी मौसम की प्रतिकूलता के कारण बड़ी भीषण दुर्घटनाएँ हो जाती हैं।

जिन प्रदेशों में शीत काल में हिम वर्षा होती है वहाँ स्थल यातायात को जलवायु प्रभावित करती है। बर्फ सड़कों और रेलमार्गों पर एकत्र हो जाती है और मार्गों का साफ रखना एक समस्या बन जाती है। मार्गों से बर्फ हटाने के लिये बड़ी शक्तिशाली मशीनों का प्रयोग किया जाता है। सियरा निवादा के पर्वतीय दर्रों में रेलगाड़ी को हिमाच्छादन से बचाने के लिये शेड निर्मित किये जाते हैं। उत्तरी ध्रुवीय प्रदेशों में तो मौसम के परिवर्तन के साथ-साथ यातायात के साधन भी परिवर्तित हो जाते हैं। शीत ऋतु में बर्फ पर स्लेज गाड़ी प्रयोग की जाती है और ज्योंही उसके पश्चात् बर्फ पिघलने लगती है भारवाही पशु और मनुष्य यातायात के साधन बन जाते हैं।

खण्ड ५

सड़कें

सभी थल मार्गों में सड़कें सर्वाधिक प्राचीन हैं और संसार के सभी क्षेत्रों में (ध्रुवीय प्रदेशों को छोड़कर) पाई जाती हैं। गाड़ी के प्रयोग के पूर्व सड़क का अस्तित्व संसार में नहीं था। मनुष्य और भारवाही पशु के धरातल पर चलने से

थल मार्गों का जन्म हुआ। उन्हें अपरिमार्जित भाषा में पगडण्डियाँ कहते हैं। प्रत्येक गाँव में पगडंडियाँ चारों ओर से आकर मिलती हैं। घने वनों में शिकारियों के चलने से बहुत से सकरे मार्ग उत्पन्न हो जाते हैं। इन पगडंडियों की उपयोगिता किसी से छिपी नहीं है। ये अपरिचित स्थानों में अनेक भूले-भटके पथिकों का मार्ग प्रदर्शन करती हैं। कहीं-कहीं पगडंडियाँ दो स्थानों की कम से कम दूरी को प्रकट करती हैं और इस प्रकार पैदल चलने वालों का समय बचाती हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि पहिएदार गाड़ी सड़कों के जन्म का कारण बनी। जहाँ-जहाँ गाड़ी गई सड़कें उत्पन्न होती गईं। मोटर लारी के जन्म से बहुत पहिले संसार में सड़कों का जन्म हो चुका था।

रोम निवासियों ने बहुत पहले सड़कों के महत्व को भलीभाँति समझ लिया था। वे संसार के प्रथम महान् सड़क निर्माता कहे जाते हैं। कहा जाता है कि उनका विशाल साम्राज्य अच्छी सड़कों पर टिका हुआ था। प्राचीन रोम ने सड़कों की strategic स्वरूप को पहिचाना था। अच्छी सड़कों के कारण सेना और रसद व सामान बड़ी शीघ्रता से निर्दिष्ट स्थान पर भेजा जा सकता था। रोम साम्राज्य के अन्तर्गत इटली, आल्पस के पर्वतीय भागों, स्पेन, जर्मनी और इंगलैंड में सड़कों का निर्माण हुआ। अन्य प्राचीन देश निवासियों ने भी पक्की सड़कों का निर्माण किया। इनमें चीन निवासी, पीरू देश के इका (Incas) और भारतीयों के नाम उल्लेखनीय हैं। प्राचीन काल में भारतवर्ष में पक्की सड़कें बनाई जाती थीं। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में नगर की सड़कों का पता चला है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय रोम निवासियों से किसी भाँति भी पीछे नहीं थे। हमारे देश में भी सड़कों का प्रयोग अति प्राचीन है। हमारे देश के हिन्दू और मुलमान राजाओं ने बहुत-सी सड़कों का निर्माण कराया था। मुगलकाल में बहुत-सी सड़कों (ट्रङ्करोड) का निर्माण हुआ। ये सड़कें सेना और व्यापारियों के प्रयोग में आती थीं। सड़कों के किनारे स्थान-स्थान पर दूरी प्रदर्शन प्रस्तर लगे थे। दोनों ओर छायेदार वृक्ष लगाए जाते थे। पुलिस चौकियाँ सड़कों के किनारे स्थित थीं। पेशावर से दिल्ली, आगरा होकर इलाहाबाद तक सड़कें जाती थीं। परन्तु उस समय गाड़ी, मोटर लारी या ट्रक नहीं थे और न नदियों पर पुल ही होते थे। मुसलमान राजाओं की बहुत-सी सड़कें अब भी वर्तमान हैं। कलकत्ते से पेशावर तक की सड़क मुसलमान राजाओं की बनवाई हुई है। मनुष्य मोटर युग से बहुत पहले सड़कों से पूर्ण परिचित हो चुका था।

सड़क निर्माण कार्य की सबसे बड़ी समस्या नदियों, नालों और नहरों पर पुल बनाने से सम्बन्धित है। प्राचीन काल में पुल बड़े सरल होते थे। ये प्राय: बड़े-बड़े वृक्षों से केवल सकरे नालों पर पर बनाए जाते थे और बड़ी-बड़ी नदियों पर पुल बनाना बड़ा कठिन था, अतः उन पर पुल नहीं बनाये जाते थे और उन्हें अन्य ढंगों से पार किया जाता था। पुल निर्माण अठारहवीं शताब्दी से सिविल इंजिनियरिंग का प्रमुख अंग बन गया और धातु के प्रयोग से बड़े-बड़े पुलों का निर्माण सम्भव हो सका। आधुनिक युग में नदियों पर पुल बनाने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं प्रतीत होती।

सड़कों के कार्य—स्थानीय यातायात सड़कों को जन्म देता है और वही उनको जीवित रखता है। सड़कें शरीर की धमनियाँ हैं और उनमें यातायात रूपी रक्त का संचार होता रहता है। जब तक यातायात रूपी रक्त बहता रहता है, सड़कें जीवित रहती हैं अन्यथा वे विनष्ट हो जाती हैं।

हमें उन सड़कों के बहुत थोड़े उदाहरण मिलेंगे जो बहुत दूर के यातायात के काम आतीं हैं। उन्हें आजकल ट्रंक रोड के नाम से पुकारा जाता है। हमारे देश में सड़कों का प्रमुख कार्य देहाती क्षेत्रों और बड़े-बड़े नगरों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना है। देहात सड़कों का कार्य क्षेत्र कहा जाता है। वे कृषि-प्रधान गाँव को बाजार से जोड़ती हैं और कस्बों को नगरों और रेलवे स्टेशनों से जोड़ती हैं। संसार के जिन क्षेत्रों में रेल मार्गों का विकास नहीं हुआ है, वहाँ सड़कें आधुनिक यातायात के मुख्य साधन हैं। किन्तु उन्नतिशील देशों में जैसे यू० एस० ए०, भारतवर्ष, पश्चिमी यूरोपीय देश और जापान में रेलों के जाल को पूरा करती हैं अर्थात् रेल से दूर स्थित स्थानों का रेलमार्गों से सम्पर्क स्थापित करती हैं। (To a large degree the highway fills with a finer weave the coarse meshes of the railway net.) आजकल कानपुर, बम्बई इत्यादि बड़े-बड़े नगरों में सड़कों का कार्य सराहनीय है। दिन भर बसें मनुष्य को इधर से उधर ले जाती हैं।

सड़कों के विकास में मोटर का विशेष हाथ है। जैसे-जैसे मोटरों के प्रयोग में वृद्धि हुई अच्छी सड़कों की आवश्यकता बढ़ती गई। रेलों से सड़कों के निर्माण में कम खर्च पड़ता है। अतः बहुत से देशों में जहाँ पैसे की कमी है, सड़कों के निर्माण से यातायात को विकसित किया जाता है। मोटर, बस और ट्रक मनुष्य और पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाते हैं।

३१ मार्च सन् १९४८ में भारतवर्ष में सड़कों की लम्बाई २,४८६१४ मील

थी, इनमें नगर की सड़कें सम्मिलित नहीं हैं, इनमें ६०००० मील (जिनमें १३४०० मील राष्ट्रीय सड़कें (National highways) थीं सड़कें पक्की थीं और शेष १५८८०६ कच्ची सड़कें। यदि हम नगर की पक्की सड़कों को न सम्मिलित करें तो भारत में केवल ११८००० मील सड़कें ऐसी हैं जो साल के प्रत्येक मौसम में प्रयुक्त हो सकतीं हैं। भारतीय सड़कें देश की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकतीं। क्योंकि प्रति सौ वर्ग मील क्षेत्र के लिए केवल ६.७ मील लम्बी सड़कें हैं, अतएव सड़कों के विकास के लिए पञ्चवर्षीय योजना ने अधिक ध्यान दिया है और प्रथम योजना में १६० करोड़ रुपये सड़कों के निर्माण के लिए रखे गए थे। पञ्चवर्षीय योजना में ३००० मील लम्बी नई सड़कां और १६००० या १७००० मील ग्रामीण सड़कों के निर्माण का लक्ष्य था। भारत सरकार ने कई नई सड़कों का निर्माण कराया है। उदाहरणार्थ पथानकोट-जम्मू, त्रिपुरा-आसाम और कुछ सड़कें शिक्किम में। वैसे तो सड़कें प्रान्तीय बटवारों का विषय है फिर भी कुछ सड़कें संघीय सरकार की देख-रेख में हैं जिन्हें National highways कहते हैं।

भारतवर्ष में सड़क-निर्माण-कार्य के मार्ग में बहुत सी भौगोलिक कठिनाइयां हैं। बहुत से विशाल क्षेत्रों में जो खेती की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं पक्की सड़कें बनाने के लिए कंकड़-पत्थर दुष्प्राप्य हैं। प्रायद्वीप में लेटराइट चट्टान सड़कें बनाने में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त होती हैं। परन्तु लेटराइट की सड़क प्रारम्भ में अच्छी होती है किन्तु बाद में उस पर गर्द ही गर्द दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त पुलों के निर्माण में काफी खर्च पड़ता है। बैलगाड़ी के पहियों में लोहे की हालें चढ़ायी होती हैं, इनसे भी सड़क खराब हो जाती है। अतः रबड़ के टायरों का प्रयोग वांछनीय है और ये बड़े नगरों के पास प्रयोग में आने लगे हैं।

सड़क—यातायात के सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतवर्ष में बैलगाड़ियों का स्थान महत्वपूर्ण है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारतवर्ष में ८७ लाख बैलगाड़ियाँ थीं। भारतवर्ष में सभी प्रकार की मोटर गाड़ियों की संख्या सन् १९५०-५१ के अन्त में ३१०१४५ थी जिनमें मोटर साइकिल, मोटर कार तथा लारी इत्यादि सभी सम्मिलित थे।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मोटर यातायात के योग्य ३० लाख मील सड़कें हैं। संयुक्त राज्य के पश्चात् क्रमशः निम्नलिखित देशों के नाम आते हैं—

रूस, जापान, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन। जापान में सड़क का घनत्व सबसे अधिक है। (सड़क के घनत्व से अर्थ है प्रति वर्ग मील के

लिए कितने मील सड़कें)। इसके पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन, डेनमार्क, फ्रांस, आयरलैंड और बेल्जियम के स्थान हैं। पश्चिमी योरप और पूर्वी उत्तरी अमेरिका में सड़कों के घने जाल बिछे हुए हैं। इन क्षेत्रों में जनसंख्या घनी है और मनुष्यों का जीवन स्तर ऊँचा है। इन भागों में प्रतिवर्ग मील के लिए १ मील सड़क पड़ती है।

खण्ड ६

रेलगाड़ी और रेलमार्ग

रेलगाड़ी की उत्पत्ति—पिछले विवरण से सड़क की प्राचीनता से आप भली भाँति परिचित हो गए होंगे। सड़कें जितनी ही प्राचीन हैं रेल उतनी ही नवीन। रेलों की उत्पत्ति गत शताब्दी में हुई थी। प्रथम रेल मार्ग का निर्माण सन् १८३५ ई० में इंगलैंड में हुआ था। रेल मार्ग के दो अंग होते हैं, एक तो लोहे की पटरी और दूसरे लोकोमोटिव, दोनों का ही जन्म स्थान इंगलैंड माना गया है। स्टीफेन्सन (Stephenson) नाम के एक अंग्रेज महोदय इंजिन के जन्मदाता कहे जाते हैं। पहली रेलगाड़ी सन् १८३० में मैन्चेस्टर से लिवरपूल के लिए रवाना हुई जिसके चालक स्वयं स्टीफेन्सन महोदय थे। इस प्रकार रेलों का प्रयोग केवल सवा सौ साल पुराना है। इतने थोड़े समय में रेल यातायात ने संसार में महान् परिवर्तन उपस्थित कर दिए हैं। संसार के जिन-जिन क्षेत्रों में पाश्चात्य सभ्यता ने पदार्पण किया रेलें उसकी अनुगामिनी बनती गईं; और जिन भागों में रेलों का निर्माण होता गया वहाँ के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक मानचित्र भी परिवर्तित होते गए।

रेल थल यातायात का सर्वोत्तम साधन है। रेलगाड़ी में बड़ी भारी खींचने की क्षमता होती है। रेलें दूर स्थित स्थानों के बीच यातायात के लिए बहुत ही अनुकूल हैं क्योंकि रेल में अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक चाल होती है। अधिक गति होने के कारण शीघ्र विनष्ट होने वाली वस्तुएँ जैसे मांस और ताजे फल उत्पादन स्थान से उपभोग की जगहों को भेजी जा सकती हैं। कानपुर के आसपास से प्राप्त होने वाली मछलियाँ २४ घन्टे के अन्दर कलकत्ता पहुँच जाती हैं।

रेलों के प्रचार से संसार में आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। उसने मनुष्य को उस शक्ति की सेवा प्रदान की जिसमें आगे चलकर बहुत से सुधार किए गए। गत सौ वर्षों में रेल ने समय-समय पर टेलीग्राफ, टेलीफोन और विद्युत रेल, बेतार का तार, वायुयान, मोटर और जलयान की सहायता से एक नए संसार का निर्माण कर दिया है। मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का सम्वर्धन सम्भव हो सका

और विभिन्न क्षेत्रों के मनुष्यों में सामाजिक सम्पर्क की स्थापना हुई, लोग एक दूसरे के निकट आए और एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा।

रेलों से लाभ

रेलों ने नए प्रदेशों को मनुष्य के रहने के लिए अनुकूल बना दिया, उनके आर्थिक साधनों का उपभोग भी मानवहित के लिए होने लगा जैसे पश्चिमी कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और आस्ट्रेलिया में। कनाडा और साइबेरिया नए प्रदेशों की उन्नति के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

रेल यातायात दूर की यात्रा के लिए बहुत ही उपयुक्त है। रेलों से राजनैतिक एकता की स्थापना हो जाती है जैसे भारतवर्ष और आस्ट्रेलिया में।

रेलों के द्वारा दुर्गम और अनुपजाऊ क्षेत्रों की खनिज सम्पत्ति से पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है जैसे पश्चिमी आस्ट्रेलिया की खानें और स्वेडन की गेलीवारा की लोहे की खानें।

युद्ध के समय सैनिक, रसद और बारूद बड़ी द्रुत गति से एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाये जाते हैं। ट्रांस साइबेरियन रेलवे के कारण सन् १९०५ में रूस ने जापान के साथ युद्ध किया जो घर से ५००० मील दूर है।

भारतवर्ष के बहुत से भागों में जलवायु की अनिश्चितता के कारण बहुधा अकाल पड़ जाते हैं। जब से रेलें बन गई दूसरे भागों से भोजन पहुँचाया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रेलों ने अकाल पर विजय प्राप्त कर ली है।

भारतवर्ष तथा अन्य देशों के औद्योगिक विकास को काफी सहयोग रेलों से मिला।

रेलमार्गों का निर्माण—यह प्रायः देखने में आता है कि रेल और सड़कें साथ-साथ चलती हैं लेकिन गति के लिए यह आवश्यक है कि जमीन का ढाल कम से कम हो। अतएव रेलमार्गों के निर्माण में मनुष्य को स्थान-स्थान पर बाँध बनाने पड़े, जमीन को काटना पड़ा और पर्वतों में सुरंग बनानी पड़ी। इस प्रकार भूरचना का प्रभाव सड़कों से अधिक रेलों पर दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक नाले, नदी और नहर पुल बनाना आवश्यक है, अतएव रेलमार्ग उन क्षेत्रों से होकर निर्मित किया जाता है जहाँ कम से कम पुल बनाने पड़ें। पहाड़ों की दिशाओं से भी रेल मार्ग प्रभावित होता है। इस प्रकार दूरी का कोई विचार न करके ढाल को कम से कम रखने का विशेष ध्यान दिया जाता है।

रेल मार्गों का विकास और उनका आधुनिक वितरण

इसमें संदेह नहीं कि रेलों ने पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार का अनुसरण किया है। भारतवर्ष में अँग्रेजी सरकार ने १८५४ में रेल निर्माण का श्री गणेश किया। आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका में भी रेलों का निर्माण पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण हुआ है। गत शताब्दी के मध्य में संसार में रेल निर्माण प्रारम्भ हुआ और आजकल शायद ही ऐसा कोई देश हो जहाँ एक मील लम्बा रेल मार्ग भी न हो। रेलमार्गों की लम्बाई भिन्न-भिन्न वर्षों में इस प्रकार थी—

१८४० में	७६७६ किलोमीटर[१]
१८७० ,,	२८६००० ,,
१९०० ,,	७९०००० ,,
१९१० ,,	१३००००० ,,

सन् १९०५ में सारे संसार में लगभग ७५०००० मील लम्बे रेल मार्ग थे। इनमें से ३२०००० मील केवल उत्तरी अमरीका में पाए जाते हैं। अन्य महाद्वीपों के रेलमार्गों की लम्बाई निम्नांकित है।

१ यूरोप	२५०००० मील
२ दक्षिणी अमेरिका (पश्चिमी द्वीप समूह को मिलाकर)	६७००० ,,
३ एशिया	८४००० ,,
४ आस्ट्रेलिया और अन्य प्रशान्त महासागरीय द्वीप	३१००० ,,
५ अफ्रीका	२१५०० ,,

सन् १९४० में समस्त संसार में लगभग ८३१००० मील लम्बे रेल मार्ग थे।[२]

यूरोप	२५९००० मील
अमेरिका	३९१००० ,,
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२५६००० ,,

पश्चिमी योरप और पूर्वी उत्तरी अमेरिका में रेलों का सबसे अधिक विकास हुआ है। इन भूखण्डों में रेलों का जो घना जाल देखने को मिलता है अन्यत्र नहीं।

---

[१] $\frac{1}{2}$ मील = १ किलोमीटर

[२] ब्रुंश, पृष्ठ १२

इन दोनों भागों में शायद ही कोई ऐसा स्थान होगा जो रेल से १० मील से अधिक दूर हो। इंगलैण्ड, बेल्जियम, उत्तरी फ्रांस, दक्षिणी-पश्चिमी जर्मनी और अमेरिका के अटलांटिक तट पर बहुत से भाग रेल से एक या दो मील दूर हैं।

लेकिन रेलमार्गों का यह वितरण बहुत ही विषम है। एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के भीतरी भागों में बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ के निवासी रेलों के स्वप्न ही देखते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अभी रेल निर्माण का कार्य समाप्त नहीं हुआ है और रेलों का सम्बर्धन भविष्य में चलता रहेगा। भारतवर्ष और जावा को छोड़ कर शीतोष्ण कटिबंध के अतिरिक्त रेलों का विकास अन्यत्र नहीं हुआ है और यदि हुआ भी है तो बहुत छोटे पैमाने पर। कोई कारण नहीं है कि रेलें ध्रुवीय और भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में न बढ़ाई जायँ।

भारत में रेलों का विकास—भारतीय रेलों की लम्बाई एशिया में सबसे अधिक है और संसार में इसका चतुर्थ स्थान है। सन् १८५३ में १६ अप्रैल को पहली ट्रेन बम्बई से थाना तक चली थी; इस ट्रेन ने २१½ मील की दूरी तै की थी। इस समय भारतीय संघ के रेल मार्गों की लम्बाई ३४१२३ मील है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए निम्नांकित सूची आवश्यक प्रतीत होती है—

	रेलमार्ग मीलों में
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२५२८७०
रूस	४४७६०
कनाडा	४२५५०
भारत संघ	३४०००

भारत में सर्व प्रथम अँगरेजों ने रेलों के निर्माण का श्री गणेश किया। उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर सेना तथा अस्त्र-शस्त्र भेजकर अपनी शक्ति को जमाये रखना था। उन्होंने देखा कि भारतवर्ष ऐसे विशाल देश में नये यातायात के द्वारा अधिक सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। अतः इन लोगों ने रेलों के निर्माण की ओर ध्यान आकर्षित किया। भारतीय रेलों का निर्माण लार्ड डलहौजी के नाम से सम्बन्धित है। सन् १८५६ ई० के अन्त में भारतवर्ष में ८ कम्पनियाँ थीं। वे निम्नांकित हैं—

1. The East Indian
2. The Great Indian Peninsula

3. The Madras
4. The Bombay, Baroda & Central India
5. The Eastern Bengal
6. The Indian Branch, later the Oudh and Ruhelkhand State Railway and later the part of the East Indian Railway.
7. The N. W. Ry. and
8. The South Indian Rly.

भारत संघ की समस्त रेलों को प्रबन्ध के दृष्टिकोण से छः भागों में विभाजित किया गया है। वे निम्नांकित हैं—

(१) दक्षिणी रेलवे
(२) पश्चिमी रेलवे
(३) मध्यवर्ती रेलवे
(४) उत्तरी रेलवे
(५) पूर्वीय रेलवे
(६) उत्तर पूर्वीय रेलवे

संसार के कुछ बड़े रेल मार्गों की लम्बाई

रेलवे लाइन	लम्बाई मीलों में
ट्रांस साइबेरियन	४०६४
पेरिस बर्लिन और मास्को होकर	८४६६
दक्षिणी पैसिफिक रेलवे	३६०६
अटलांटिक और पैसिफिक रेलवे	३४७५
साँटाफे और दक्षिणी पैसिफिक	३७१२
कनाडा पैसिफिक रेल	३७६८
आस्ट्रेलिया की तटीय रेल	३५००

केप टाउन से कैरो तक का रेलवे मार्ग जब बन कर तैयार हो जायगा तो इसकी कुल लम्बाई ६००० मील होगी, ट्रांस अफ्रीका रेलवे जो लोबितो की खाड़ी (Lobito Bay in Angola) से बीरा (Beira) तक है २२५० मील और जोन्सबर्ग की शाखा को मिलाकर २६७० मील है।

ओरियन्ट एक्सप्रेस	१६७८ मील
सिम्पिलन ओरियन्ट	१८६२ "
ब्यूनास एरीज़ से वालपरेजो	८८७ "
ट्रान्स ईरान	८७५ "
हैदरपाशा रेलवे	११२० "

विद्युत रेल—यातायात में विद्युत का प्रयोग तीन क्षेत्रों में हुआ है।

(१) नगरों की ट्राम में

(२) दो नगरों के मध्य की रेलों में

(३) और कुछ सीमा तक वाष्प इंजन के स्थान पर विद्युत इंजन का प्रयोग सुरंगों में, और पर्वतीय भागों में जहाँ ढाल अधिक होता है पानी भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है और पन बिजली (Hydro Electricity) उत्पन्न की जा सकती है, किया जाता है। मोटर बस के पूर्व शहरों में इलेक्ट्रिक रेलवे अधिक थीं किन्तु अब बसों के प्रयोग ने उसके महत्व को घटा दिया है और संयुक राज्य अमेरिका में अब विद्युत रेलों को स्थगित कर दिया गया है। बड़े-बड़े शहरों और सुरंगों में धुएँ और गैस से बचाव के लिए बिजली के इंजन इस्तेमाल होते हैं।

हमारे देश में बम्बई से पूना तक रेल बिजली से चलती है। कलकत्ता के पास पूर्वी रेलवे का कुछ भाग इलेक्ट्रिफाइड होने जा रहा है।

खण्ड ७

जलीय यातायात

ऐतिहासिक विकास—जल यातायात थल यातायात की अपेक्षा कहीं अधिक सरल है। मनुष्य को जल के माध्यम से यातायात में कम प्रयास करना पड़ता है। जल में न तो कोई मार्ग बनाने की आवश्यकता पड़ी और न उसे सँभालने की ही आवश्यकता हुई। अतएव आदिम निवासियों में जलीय यातायात प्रायः अधिक विकसित दशा में मिलेगा। प्रारम्भ की नाव को रैफ्ट (Raft) कहते हैं। घास, लकड़ी के लट्ठों, नरकट और अन्य हलके पदार्थों से बनाई जाती है। टसमानिया और मिश्र के निवासी और टिटीकाका झील में 'इनका (Inca) लोग ऐसे रैफ्ट का प्रयोग करते हैं। दक्षिणी अन्डमान में जारवा (Jarawa) लकड़ी की बनी हुई डोंगियों (Canoes) के स्थान पर बाँस से निर्मित 'रैफ्ट' छोटी खाड़ियों को पार करने के लिए प्रयोग में

चित्र ४७
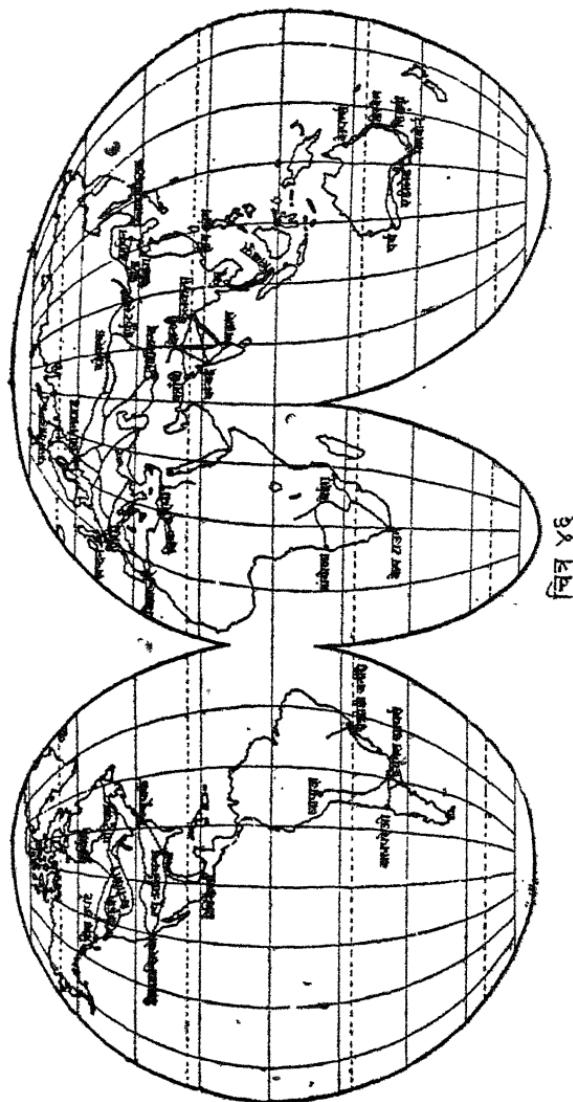
लाते हैं। मलाया के सेमाँग (Semang) और अफ्रीका पीरू और मैक्सिको की पिछड़ी जातियाँ 'रैफ्ट' को काम में लाती हैं।

दक्षिणी-पश्चिमी एशियाई देशों (ईराक इत्यादि) में किलेक (Kelek) नदियों में यातायात का प्रमुख साधन है। किलेक पशुओं की खालों की बनी होती हैं जिसमें हवा भरी होती है। यह प्रायः टिगरिस नदी में दृष्टिगत होती है। मिश्र और भारतवर्ष में घड़ों को उलटकर एक दूसरे से बाँध दिया जाता है जिन्हें चन्नई कहते हैं। दजला और फरात नदियों में टोकरियों की बनी हुई गोल गूफा (Gufa) प्रयुक्त होती है।

चर्म निर्मित नौकाओं के सुन्दर उदाहरण एस्कीमों की उमियाक (Umiak) और कयाक (Kayak) हैं। उमियाक को 'स्त्री की नाव' से सम्बोधित किया जाता है लेकिन ग्रीनलैण्ड को छोड़कर सर्वत्र पुरुष ही इसका प्रयोग करते हैं। ये नावें बड़े-बड़े शिकार के लिए प्रयुक्त होती हैं। परन्तु इनका प्रयोग यातायात के लिए नहीं होता और धीरे-धीरे लुप्तप्राय हो रही हैं।

जिन भागों में बड़े-बड़े पेड़ उगते हैं वहाँ पर छाल की नावें बनाई जाती हैं जैसे ब्रिटिश कोलम्बिया और आस्ट्रेलिया में। तत्पश्चात् पेड़ों के तने से नावें बनाई जाने लगीं। उसके बाद लकड़ी को खोखला करके नावें निर्मित की जानी लगीं।

नौका-निर्माण-क्रिया आदि से लेकर अन्त तक बड़े उत्सव, प्रार्थना, भोज और मन्त्रों द्वारा सम्पन्न होती है। ये जातियाँ अधिक भाग्यवादी हैं। आस्ट्रेलिया और अफ्रीका में तो मनुष्य को बलि भी दी जाती है।

प्रारम्भिक अन्तर्प्रादेशिक एवं समुद्री यातायात

सभ्यता के प्रारम्भिक चरणों में भारत, चीन और मिश्र में नदियों से रैफ्ट और नावों द्वारा यातायात होता था। ग्रीस, रोम और फोनेशिया के निवासियों ने सर्व प्रथम नावों में पालों को बाँधकर वायुशक्ति का प्रयोग किया और समुद्री यातायात की स्थापना की। इन्हीं नावों के द्वारा इन लोगों ने बड़े-बड़े उपनिवेश स्थापित किए और बहुत दिनों तक उन पर अपना अधिकार रक्खा। अतः प्रारम्भ में नदियों के किनारे और भूमध्य सागर जैसे भीतरी समुद्रों के तटों पर सभ्यताओं का जन्म और सम्वर्धन हुआ क्योंकि इन भागों में उत्पादन और यातायात की अनेक सुविधाएँ थीं।

भारतवासी और चीन निवासी नाविक दिक्-सूचक-यन्त्र (Mariner's compass) से उस समय परिचित थे जब यूरोप के लोग उसका नाम भी नहीं

जानते थे। जब चौदहवीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में इस यन्त्र का प्रयोग हुआ तो नाविक इसकी सहायता से समुद्र में कहीं भी जा सकते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक लोग अमेरिका और भारतवर्ष पहुँच गए। वायु से चलने वाले छोटे जल पोतों ने १५ वीं से १६ वीं शताब्दी तक नए प्रदेशों की खोज और उनके बस जाने तथा उन्नति में जो योग दिया था उससे हम लोग भलीभाँति परिचित हैं। यह आश्चर्य की बात है कि मन्द गति से चलने वाले छोटे जहाजों ने संसार के इतिहास को इस प्रकार से प्रभावित किया। कोलम्बस ने जिन जहाजों की सहायता से अमेरिका की खोज की उनके द्वारा बहुत कम भार वहन किया जा सकता था। सेन्टामाना (Santa Mana) १०० टन, पिन्टा (Pinta) ५० टन और निना (Nina) ४० टन भार वहन कर सकती थी।

वायु संचालित जलपोत सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों की व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ हुए। धीरे-धीरे जहाजों में परिवर्तन होते गए। उन्नीसवीं शताब्दी में काष्ठ निर्मित वायु संचालित जलयान लुप्तप्राय होने लगे और लौह निर्मित वाष्प संचालित जलपोत ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया। भीतरी जलमार्गों में भी उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वाष्प से चलने वाली नावों का प्रयोग शुरू हो गया।

आधुनिक काल लाइनर (Liner) और ट्रैम्प (Tramp) का युग है। लाइनर यात्रियों को संसार के एक कोने से दूसरे तक ले जाते हैं और ट्रैम्प खनिजों, कृषि पदार्थों, और निर्मित वस्तुओं को वहन करते हैं।

आजकल समुद्रीय जहाज और समुद्रीय यातायात में डिजेल इंजन के प्रयोग से महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया है। अतः कोयले के स्थान पर तेल से चलने वाले जलयानों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इस इंजन के कारण जहाज में काफी स्थान की बचत हो जायगी क्योंकि कोयले से चलने वाले जहाजों में भट्ठियाँ और ब्वायलर अधिक स्थान घेर लेते हैं। इसके अतिरिक्त डिजेल इंजन में कम ईंधन खर्च होता है। अतः आर्थिक दृष्टिकोण से इसके संचालक लाभान्वित होते हैं।

अन्तर्देशीय जल-यातायात

(Inland Water Transport)

अन्तर्देशीय जल-यातायात के अन्तर्गत नदियाँ, नहर और झील आती हैं। आजकल मरुस्थल और पर्वतीय प्रदेशों को छोड़कर संसार के प्रायः सभी भागों में

नदियाँ यातायात के लिये प्रयुक्त होती हैं। रेल युग से पूर्व वे आज से कहीं अधिक यातायात के काम की थीं। फिर भी आधुनिक काल में बहुत से भागों में नदियाँ यातायात के प्रमुख साधन हैं। निस्सन्देह थल मार्गों की अपेक्षा जल मार्ग अधिक सुविधाजनक थे। मनुष्य को थल मार्गों में जिन बाधाओं का सामना करना पड़ता था, जल मार्ग उनसे वंचित थे। देश के भीतरी भागों से बहुत सी वस्तुएँ बाहरी प्रदेशों को भेजी जाती थीं। आजकल अविकसित प्रदेशों के व्यापार में नदियों का कार्य प्रशसंनीय है। उदाहरणार्थ, चीन देश की यांगटिसी नदी वस्तुओं को आंतरिक भागों तक पहुँचाने और बाह्य प्रदेशों को भेजने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। इसी प्रकार अफ्रीका की कांगो नदी में यद्यपि बहुत से जल-प्रपात नौ-वहन में बाधा उपस्थित करते हैं, तिस पर भी विषुवत् रेखीय अफ्रीका के घने वनों में वह यातायात का एकमात्र साधन है। संसार की सबसे बड़ी नदी अमेजन का ढाल अत्यधिक मन्द है। वह जलप्रपात विमुक्त, अधिक गहरी और चौड़ी है, अतएव आधुनिक जलयानों के लिए प्रयुक्त होती है।

जिन प्रदेशों में सड़कों और रेलों का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है वहाँ की नदियों में नौवहन का महत्व घट रहा है। चूँकि अन्तर्प्रदेशीय जल-मार्गों में कभी-कभी बहुत सी प्राकृतिक बाधाएँ उपस्थित होती हैं, इसीलिये यदि यह कहा जाय कि नदियाँ रेलों की प्रतियोगिता में असमर्थ हैं तो अतिशयोक्ति न होगी। नदियों में नौतरण सुविधाएँ सामयिक वर्षा से प्रभावित होतीं हैं। वर्षा ऋतु के पश्चात् उनमें नौवहन सुगम होता है, परन्तु शुष्क ऋतु में पानी की कमी नौवहन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। मिश्र की नील नदी इन विशेषताओं का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करती है। शैशवकाल के जलप्रपात एवं प्रौढ़ावस्था की वक्रता (Meanders) नौवहन की प्रतिकूल दशाएँ हैं। वृद्धावस्था में सरिताएँ अपने मार्ग को बदलती हैं, और डेल्टा के निकट बालू के ढेर एकत्र करतीं हैं। यह दशाएँ नौवहन को प्रोत्साहित नहीं करतीं हैं। ध्रुवीय प्रदेशों और उनके समीपवर्ती भागों की नदियाँ शीतकाल में हिमाच्छादित हो जाती हैं। सरिता मार्गों की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि उनकी दिशा प्रकृति निर्धारित करती है। इसके विपरीत मनुष्य रेल और सड़क का निर्माण अपनी आवश्यकतानुसार करता है। यदि साइबेरिया की नदियाँ दक्षिण-उत्तर न बहकर पूर्व-पश्चिम बही होतीं तो कदाचित् ट्रान्ससाइबेरियन रेलवे के बनने से पूर्व उस देश की गणना संसार के बड़े उन्नतिशील देशों में हो गई होती।

संसार की प्रमुख नौगम्य सरितायें

यांगटिसी नदी—यह एशिया की सबसे बड़ी नदी है और चीन देश के मध्य से होकर बहती है। इसके द्वारा चीन का अधिकांश व्यापार होता है। इस नदी में ६३० मील तक महासागरीय जलपोत आते हैं। इसके अतिरिक्त नावें बहुत दूर तक देश के अन्दर चली जाती हैं। इस नदी की सहायक नदियाँ भी नौ-वहन के उपयुक्त हैं। घने बसे मध्य चीन में रेलों और सड़कों की कमी के कारण समस्त यातायात इस नदी द्वारा ही होता है। यांगटिसी नदी के मुहाने पर एशिया का प्रसिद्ध बन्दरगाह शंघाई स्थित है जिसे चीन का न्यूयार्क कहते हैं क्योंकि उसके वाह्य व्यापार का $\frac{3}{4}$ भाग इस बन्दरगाह द्वारा होता है।

नील नदी—नील नदी भूमध्यसागरीय प्रदेश और विषुवत् रेखीय अफ्रीका के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। वैसे तो आजकल मिस्र और सूडान का व्यापार सड़कों द्वारा होने लगा है फिर भी मिस्र के जगत-प्रसिद्ध पिरेमिड को देखने के लिए बहुत लोग आते हैं। ये यात्री नील नदी में चलने वाले स्टीमरों से देश के भीतरी प्रदेशों में पहुँचते हैं। नील नदी से होने वाले समस्त यातायात का ८०% यात्री होते हैं।

राइन नदी—यह पश्चिमी योरुप का प्रधान जलमार्ग है। इसमें कोलोन शहर तक नावें आती हैं। मुहाने से लेकर ५५० मील तक यह नदी नौवहन के लिए उपयुक्त है। इसी कारण से इसके आसपास जर्मनी के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र स्थित हैं।

डैन्यूब नदी—यह योरुप की दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय नदी है, और एक अत्यंत उपयोगी जलमार्ग है। मुहाने से लेकर १०० मील तक विशाल जलपोत जा सकते हैं और आइरनगेट (Iron Gates) तक समुद्री नावें चलती हैं। इसी नदी के द्वारा पूर्वी योरुप के कई देशों का व्यापार होता है। यांगटिसी की सहायक नदियों की भाँति इसकी भी सहायक नदियाँ, टिज़ा, ड्रेव और सेव नौगम्य हैं।

राइन और डैन्यूब के अतिरिक्त वाल्गा, नीपर, नीस्टर और टेम्स इत्यादि नदियाँ भी यातायात के प्रमुख मार्ग हैं।

मिसीसिपी नदी—उत्तरी अमरीका की मिसीसिपी नदी महाद्वीप के मध्य-वर्ती भागों से निकलकर मेक्सिको की खाड़ी में गिरती है। इसके मुहाने के पास एक बड़ा डेल्टा बन गया है। यह नदी अपना मार्ग प्रायः बदलती रहती है। इसमें सेन्ट-पाल शहर तक स्टीमर चले जाते हैं। इसकी सहायक नदियाँ ओहिओ और मिसौरी

यातायात के लिए उपयुक्त हैं। इन नदियों में शुष्क ऋतु के दिनों में यातायात बन्द हो जाता है। उत्तरी अमरीका की अन्य नदियाँ जैसे सेन्ट लारेन्स, मेकेन्जी और युकन में भी जहाज चलते हैं।

हमारे देश की गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ भी नौवहन के योग्य हैं, इन नदियों में बड़े-बड़े स्टीमर चलते हैं। ब्रह्मपुत्र में डिब्रूगढ़ तक यातायात होता है और गंगा में पटना तक। भारत सरकार इन दोनों जलमार्गों के विकास की एक योजना तैयार कर रही है।

जल यातायात में झीलों का महत्व

संसार की बड़ी-बड़ी झीलें यातायात के लिए प्रयुक्त होती हैं। वैसे तो वे नौवहन में नदियों की अपेक्षा कम बाधा प्रस्तुत करती हैं किन्तु शीत प्रदेशों की झील जाड़ों में बर्फ से ढक जाती हैं। संयुक्त राष्ट्र के लोहे और कोयले के प्रमुख क्षेत्रों के
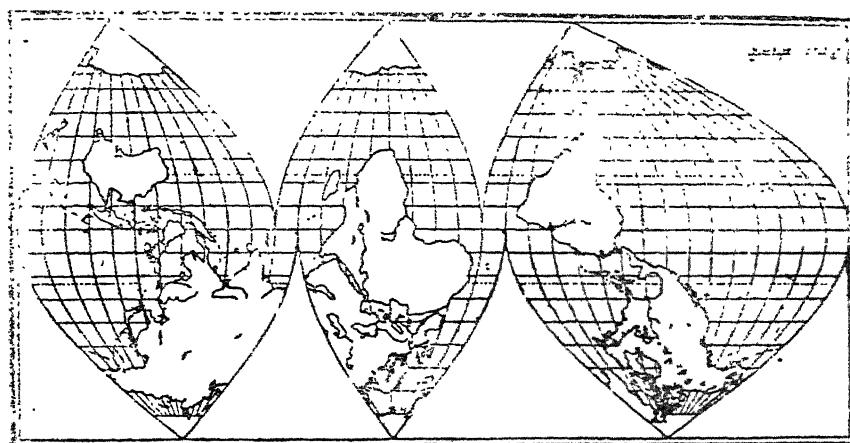
चित्र ४७

मध्य में स्थिति के कारण ग्रेट लेक्स (Great Lakes) सेन्ट लारेन्स नदी के साथ उत्तरी अमेरिका का ही नहीं वरन् संसार का सर्वश्रेष्ठ जल मार्ग है। अमेरिका के प्रेरी प्रान्तों का गेहूँ इसी जलमार्ग द्वारा अटलांटिक तट पर स्थित बन्दरगाहों तक पहुँचता है। इसी प्रकार विक्टोरिया, टैंगानिका और न्यासा झीलें अपने समीपवर्ती भागों में यातायात के प्रमुख मार्ग बनती हैं। एशिया में केस्पियन सागर और बैकाल झील भी यातायात के काम आती हैं।

ग्रेट लेक्स जलमार्ग—यह संसार का सबसे बड़ा अन्तर्देशीय जल मार्ग है। ईरी नहर के निर्माण ने अटलांटिक महासागर को अमेरिका की बड़ी झीलों से मिला दिया है। यह झीलें अधिक गहरी हैं और पश्चिम से पूर्व की ओर फैली हैं, अतएव इनसे होकर बड़े-बड़े जलयान सरलतापूर्वक आते-जाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इनके किनारे गेहूँ, लोहा और कोयला उत्पादक क्षेत्र विद्यमान हैं। ये पदार्थ इन जलमार्गों द्वारा अन्य स्थानों को भेजे जाते हैं। यह झीलें लोहा उत्पादक मध्य-पश्चिमी क्षेत्रों को पूर्वी औद्योगिक एवं कोयला उत्पादक क्षेत्रों से मिलाती हैं। सेन्ट मेरी नदी सुपीरियर और ह्यूरन झीलों को मिलाती है। इसमें कई जलप्रपात पाये जाते हैं। जगत-प्रसिद्ध नियाग्रा जलप्रपात ओन्टारियो और ईरी झीलों को जोड़ने वाली नियाग्रा नदी पर स्थित है। यह जलप्रपात यातायात में बाधा उपस्थित करते थे। अतः इन झीलों को उपयोगी बनाने के लिए कई नहरों का निर्माण किया गया। वलेण्ड नहर नियाग्रा जल प्रपात के निकट ईरी और ओन्टारिओ को मिलाती है। सुपीरियर और ह्यूरन को मिलाने वाली नदी पर स्थित जलप्रपात को बचाने के लिए सेन्टमेरी केनाल (Soo Canal) का निर्माण किया गया है।

नहरें

नदियाँ और झीलें प्रकृति की देन हैं। पिछले सौ वर्षों में मनुष्य ने जल यातायात में एक महान् क्रान्ति उपस्थित कर दी है। वह अपनी बुद्धि और पौरुष से प्राकृतिक बाधाओं पर विजय प्राप्त कर आर्थिक एवं राजनैतिक उन्नति करना चाहता है। पनामा, स्वेज, कील और सू नहरें उसकी बुद्धिमत्ता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इनके निर्माण से स्थानों के बीच की दूरी कम हो गई और समय तथा धन की भी बचत हुई है। स्वेज नहर अगर हिन्द महासागर के लिये है तो पनामा प्रशान्त महासागर के लिए। स्वेज और पनामा नहरों के निर्माण में न केवल 'महासागरीय मार्ग' प्रभावित हुए हैं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वाणिज्य में भी महान परिवर्तन उपस्थित हुआ है।

स्वेज नहर—यह नहर भूमध्य सागर तथा लालसागर के बीच की भूमि को काटकर बनाई गई है। स्वेज नहर के निर्माण का श्रेय फ्रांसीसी इञ्जीनियर श्री फरडीनन्ड डि लेसेप्स (Ferdinand de Lesseps) को प्राप्त है। सन् १८५९ के अप्रैल माह में नहर की खुदाई का काम भूमध्यसागर के तट पर स्थित सईद बन्दरगाह के निकट प्रारम्भ हुआ और सन् १८६९ में इसके द्वारा यातायात होने लगा। यह नहर १०१ मील लम्बी, १६७ फीट चौड़ी तथा ३४ फीट गहरी है। इस नहर

के निर्माण के पूर्व योरुप से चलने वाले जहाज अफ्रीका का चक्कर लगाकर एशिया पहुँचते थे। इसके बन जाने से न केवल दोनों महाद्वीपों के बीच की दूरी कम हो गई है अपितु दोनों के बीच व्यापार में वृद्धि हुई। इसके बनने से उत्तमाशा अन्तरीप के बन्दरगाहों का महत्व कम हो गया।

पनामा नहर—यह नहर मध्य अमेरिका के थल संयोजक को काटकर बनाई गई है। यह प्रशान्त महासागर तथा अटलांटिक महासागर को मिलाती है। यह नहर १५ अगस्त सन् १९१४ ई० को बनकर तैयार हुई। यह पनामा राज्य में स्थित है किन्तु संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सरकार इसका प्रबन्ध करती है। नहर की लम्बाई एक किनारे से दूसरे तक ४०½ मील है और इसकी गहराई ४१ फीट है। इस नहर से प्रतिदिन ४८ पोत पार होते हैं। इसके निर्माण से उत्तरी, अमेरिका का पूर्वी तट पश्चिमी तट के अधिक समीप आ गया है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जापान तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के बन्दरगाह न्यूयार्क और लिवरपूल के अधिक निकट हो गये हैं।

कील नहर—यह नहर बाल्टिक और उत्तरी सागरों को मिलाती है और इस प्रकार ६१ मील लम्बा जल मार्ग प्रदान करती है। यह नहर सन् १८९५ में बनकर तैयार हुई। इसकी चौड़ाई १४४ फीट और गहराई ३८ फीट है। इस नहर के कारण जर्मनी के बाल्टिक सागर पर स्थित बन्दरगाह उत्तरी सागर के बन्दरगाहों से अधिक निकट हो गये हैं। जहाजों को डेनमार्क देश का चक्कर नहीं लगाना पड़ता है।

महासागरीय यातायात

कुछ समय पहले लोगों का यह विचार था कि महासागर महाद्वीपों को एक दूसरे से अलग करते हैं। किसी हद तक यह बात ठीक मालूम पड़ती है। प्राचीन समय में आवागमन के साधनों के न होने के कारण संसार के विभिन्न क्षेत्रों के मनुष्य पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रहे। किन्तु आजकल उनकी उस धारणा का परिहार हो चुका है तथा वे लोग महासागरों को महाद्वीप संयोजक मार्गों के रूप में देखने लगे हैं। प्रायः संसार का समस्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समुद्री मार्गों के द्वारा होता है। अतः इन जल मार्गों की महत्ता से सभी परिचित हैं। आधुनिक युग में उन देशों का बड़ा दुर्भाग्य है जिनके पास एक मील लम्बा समुद्र तट भी नहीं है। अफगानिस्तान, हंग्री, स्विट्जरलैंड और चेकोस्लोवाकिया इत्यादि देशों की दशा शोचनीय है, क्योंकि ये देश समुद्र पर नहीं हैं तथा समुद्रजन्य लाभों से वंचित हैं। यह कहा जाता है कि "जो देश समुद्र तट पर स्थित नहीं हैं वह सड़क से दूर स्थित घर के समान है।"

महासागर के अपने निजी आकर्षण हैं। चूँकि वे प्रकृति की देन हैं अतः संसार के सभी राष्ट्र उन्हें प्रयुक्त कर सकते हैं। इतिहास में हमने सामुद्रिक स्वतंत्रता (Freedom of the Seas) के बारे में पढ़ा है। पहले लोग समुद्र में कहीं भी स्वतन्त्रतापूर्वक जहाज चला सकते थे। और आजकल भी खुले समुद्रों में नौवहन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं। हाँ, युद्धकाल में इस प्रकार के अधिकार प्रायः छिन जाते हैं। आजकल कोई भी देश तट से तीन मील की दूरी तक समुद्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर सकता है। वह बाहरी देशों के जहाजों को उस क्षेत्र के अन्दर आने से रोक सकता है। किसी देश के समुद्रतटीय व्यापार में दूसरे देश के जहाज भाग नहीं ले सकते हैं और राष्ट्रीय हित की रक्षा के लिए यह आवश्यक भी हो जाता है। हमारे देश के समुद्रतटीय व्यापार में अन्य देशों को अपने जहाज संचालित करने का अधिकार प्राप्त नहीं क्योंकि भारत सरकार देशीय कम्पनियों को संरक्षण दे रही है।

महासागरीय मार्ग (Ocean Routes)

जल मार्गों के सस्तेपन के बारे में हम पढ़ चुके हैं। इसके अतिरिक्त ये मार्ग स्थल मार्गों से अन्य बातों में भी भिन्न हैं। रेलों एवं सड़कों की दिशा और स्थान नियत होते हैं किन्तु समुद्र में कोई नियत मार्ग नहीं होते जिन पर जहाजों को चलना पड़े। दूसरे इन मार्गों पर किसी एक का आधिपत्य नहीं। शान्ति के समय उन पर सभी देशों का अधिकार होता है। यद्यपि समुद्र में जहाज किसी भी मार्ग से और किसी भी दिशा में चल सकता है, तथापि महासागरीय व्यापार का अधिकांश उन जहाजों से सम्पादित होता है जो निश्चित मार्गों का अनुसरण करते हैं और कई सामुद्रिक राष्ट्रों ने व्यापारिक केन्द्रों के बीच के श्रेष्ठ मार्गों को नौवहन के मान चित्रों पर प्रदर्शित कर रखा है। इन मार्गों पर कई दशाओं का प्रभाव पड़ता है जैसे दूरी, हवा और तूफान, धारायें, कोहरा, बर्फ इत्यादि। इन दशाओं से प्रभावित होकर समुद्र पर भी निश्चित मार्गों का जन्म होता है जिनको सभी देश प्रयोग में लाते हैं। अब हम संसार के प्रमुख महासागरीय मार्गों के बारे में संक्षेप में लिखेंगे।

उत्तरी अटलांटिक मार्ग—यह जल मार्ग पश्चिमी योरुप के बन्दरगाहों को उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट पर स्थित बन्दरगाहों से मिलाता है। ये दोनों प्रदेश संसार के अत्यधिक घने बसे भूखंडों में हैं। अत्यन्त उन्नतिशील क्षेत्र हैं और आवश्यकता से अधिक उत्पन्न करते हैं, अतएव उपभोग के पश्चात् बचे हुए पदार्थ व्यापार के काम आते हैं। यह जलमार्ग उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम को जाता है। ४० और

५० उत्तरी अक्षांस इस मार्ग की सीमा निर्धारित करते हैं। संसार के व्यापार का पाँचवाँ भाग इसी मार्ग द्वारा होता है।

भूमध्य सागरीय जल मार्ग—सन् १८६६ ई० में स्वेज नहर के निर्माण ने महासागरीय मार्गों के मानचित्र में महान् परिवर्तन कर दिया। इसके पूर्व पश्चिमी योरुप से चलने वाले जहाज अफ्रीका का चक्कर लगाकर एशिया पहुँचते थे। यह मार्ग भूमध्य सागर, स्वेज नहर एवं लाल सागर के द्वारा योरुपीय देशों को दक्षिणी-पूर्वी एशिया एवं आस्ट्रेलिया से जोड़ता है। यह जलमार्ग यूरोपीय देशों के लिए अत्य-धिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यह मार्ग छोटे-छोटे समुद्रों से होकर जाता है और इसके दोनों ओर बहुत से छोटे-छोटे देश स्थित हैं। अतः युद्ध के समय यह मार्ग अनुरक्षित हो जाता है और ऐसे समयों में व्यापारिक राष्ट्रों को पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है।

केप जल मार्ग - यह जल मार्ग पश्चिमी यूरोप को दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका के देशों से मिलाता है और आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड के लिए भी बड़े महत्व का है। यूरोप से आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जाने वाले जहाज इसी मार्ग से होकर जाते हैं क्योंकि स्वेज नहर से होकर जाने में इन्हें अधिक कर देना पड़ता है। अफ्रीका के पश्चिमी तट के पास समुद्र बहुत कम गहरा है, इसके अतिरिक्त अफ्रीका का यह तट आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।

उत्तरी प्रशान्त महासागरीय मार्ग—यह मार्ग उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट को पूर्वी एशिया से मिलता है। यहाँ दो प्रधान जल मार्ग हैं। पहला उत्तरी बृहद् वृतमार्ग (Great Circle Route) है जो कि उत्तर दिशा की ओर मुड़ते हुए एल्यूशियन द्वीप तक पहुँच जाता है और दूसरा दक्षिणी जल मार्ग है जो हवाई द्वीप से होकर दोनों महाद्वीपों को मिलता है। हवाई द्वीप एक ऐसा चौराहा है जहाँ बहुत से जलमार्ग आकर मिलते हैं। जैसे आस्ट्रेलिया-पश्चिमी संयुक्त राज्य और कनाडा मार्ग, पनामा नहर और एशिया के मार्ग। इन मार्गों से अटलांटिक जलमार्ग की अपेक्षा कम व्यापार होता है। कारण यह है कि ये मार्ग ऐसे भूभागों को जोड़ते हैं जिनमें एक तो कम घना बसा है और दूसरे में (पूर्वी एशिया) जनसंख्या अधिक होते हुए भी विदेशी वस्तुओं की माँग कम है।

दक्षिणी अमेरिका का पूर्वीय तटीय मार्ग

यह मार्ग उत्तरी अन्ध महासागर के दोनों तटों को दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट से मिलाता है। साधारणतया पूर्वी-दक्षिणी अमेरिका संयुक्त राज्य की अपेक्षा

यूरोप से अधिक व्यापार करता है। पूर्वी-दक्षिणी अमेरिका से कृषि पदार्थ तथा प्लान्टेशन (Plantation) से प्राप्त रबर एवं अन्य वस्तुएँ योरोपीय देशों को भेजी जाती हैं और इनके बदले बनी हुई वस्तुएँ (Manufactured goods) मँगाई जाती हैं।

खण्ड ८

वायु यातायात

वायुयान यातायात का नवीनतम साधन है। पिछले ४० वर्षों में ही वायु यातायात की उन्नति हुई है। वायु यातायात की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि चाल (Speed) में इसकी बराबरी अन्य कोई साधन नहीं कर सकता है। किन्तु गति के साथ वह भारी पदार्थों को ले जाने में असमर्थ है और वायुयान यातायात का शीघ्र साधन होते हुए भी सस्ती एवं भारी वस्तुओं को ढोने में रेल और जलयानों की प्रतियोगिता में कभी भी नहीं ठहर सकता लेकिन डाक बहुमूल्य वस्तुओं के ढोने में इन्हें प्रथमता मिलती है। इस प्रकार आजकल यह ढंग यात्रियों और डाक ले जाने में ही प्रयुक्त होता है, और केवल हल्की वस्तुएँ जिन्हें शीघ्र अपने निर्दिष्ट स्थान को पहुँचना है वायुयानों से भेजी जाती हैं। सन् १९४६ ई० में संयुक्त राज्य की घरेलू कम्पनियों की कुल आय का ८९ प्रतिशत यात्रियों से, ७ प्रतिशत डाक से और केवल ४ प्रतिशत माल के ढोने से प्राप्त हुआ।

ऊपर हम वायु यातायात को प्रभावित करने वाली दशाओं के बारे में पढ़ चुके हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वर्षा, तूफान, कोहरा इत्यादि वायु यातायात को प्रभावित करते हैं। वायु मार्ग भूमि की बनावट से बहुत कम प्रभावित होते हैं फिर भी मैदान की चौरस भूमि विमान-क्षेत्र (Airfield) बनाने में सहायक होती है। समुद्रीय मार्गों की भाँति वायु मार्ग निश्चित नहीं होते। फिर भी सुरक्षा (Safety) और परिवहन की आसानी के लिए वे निश्चित मार्गों का अनुसरण करते हैं।

यातायात के साधनों में वायुयान दूर के यातायात के लिए सर्वोत्तम है क्योंकि इसमें चाल अधिक होती है। अतः समय की बड़ी भारी बचत हो जाती है। इस ढंग के विकसित होने से संसार के सभी महत्वपूर्ण स्थान दूर होते हुए भी एक दूसरे के अत्यधिक निकट हैं। वायुयान स्थानीय यातायात के लिये शायद ही प्रयुक्त होता है। वह तो केवल दूर के यातायात के लिये विशेष योग्य है। इस कारण से पश्चिमी

योरप में एवं संयुक्त राज्य ऐसे विकसित क्षेत्रों में भी बहुत से व्यापारिक केन्द्र वायु-मार्गों पर स्थित नहीं हैं। लेकिन रेल या मोटर से अगम्य स्थानों के लिए वायुयान बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है। उष्ण कटिबन्धीय दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका एवं उपध्रुवी कनाडा में रेल और मोटर से पूर्व वायुयान ने मानव की बड़ी सेवा की है।

आधुनिक शताब्दी में होने वाले दोनों महायुद्धों ने वायु यातायात को अत्यधिक प्रोत्साहित किया है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व वायुयान केवल स्थल के ऊपर ही चलते थे और समुद्रों पर होकर नहीं जाते थे। किन्तु आजकल वे प्रतिदिन सहस्रों की संख्या में महासागरों को पार करते हैं। उत्तरी अक्षांशों में वायु-यातायात मार्गों की दूरी कम करेगा। उदाहरणार्थ, न्यूयार्क और मास्को के बीच की दूरी हैम्बर्ग और बर्लिन होकर ५६०० मील है किन्तु वायुमार्ग ग्रीनलैण्ड और आइसलैण्ड होकर केवल ४६०० मील लम्बा है। हैम्बर्ग, मास्को और व्लाडीवोस्टक होकर लन्दन और टोकियो के बीच की दूरी १२००० मील है। लेकिन वायुमार्ग नार्थकेप (North Cape) होते हुए केवल ५५०० मील लम्बा है।

फ्रांस में वायु यातायात का अत्यधिक विकास हुआ। यूरोप में उसका स्थान प्रथम और संसार में छठा स्थान है।

महत्व के क्रम से इंगलैण्ड, हालैण्ड और बेल्जियम आते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में वायु यातायात बड़ी तेजी से विकसित हो रहा है। (British Overseas Air Corporation) (B. O. A. C.) न केवल योरोपीय देशों से सम्बन्ध जोड़ता है अपितु कामनवेल्थ के अन्य देशों को भी नियमित सेवा प्रदान करता है। भारतवर्ष, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया वायु मार्गों द्वारा योरप से जुड़े हैं। वायु यातायात में संयुक्त राज्य सब देशों से आगे है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् पुनः अन्तर्राष्ट्रीय और समुद्रपार (Overseas) व्यापारिक वायुचर्या (Air Service) स्थापित की गई और सन् १६४६ ई० के अन्त में संसार के अन्तराष्ट्रीय मार्गों की लम्बाई ३००,००० मील से अधिक थी जो युद्ध के पूर्व की लम्बाई के दुगने से भी अधिक थी। आठ राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली १० कम्पनियाँ उत्तरी अटलांटिक मार्ग पर अपना कार्य कर रही थीं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक वायु परिवहन का अधिकांश, अमरीकी, ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच कम्पनियों के हाथ में है।

भारत में वायु यातायात का विकास

वायुयान यातायात के नवीनतम साधनों में से एक है और हमारे देश में तुलनात्मक रूप से उसका अभी हाल ही में विकास हुआ है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण भारतवर्ष, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और यूरोप-सुदूरपूर्व वायुमार्गों पर पड़ता है और उपर्युक्त क्षेत्रों के संयोजक मार्ग भारत से होकर गुजरते हैं। हमारे देश में सन् १९३० ई० के लगभग वायु-यातायात की दिशा में प्रगित शुरू हुई।

पहिले तो केवल डाक (Mail) ले जाने के लिए ही वायु यातायात को विकसित किया गया। तत्पश्चात् सन् १९३१ में भारतवर्ष और ग्रेट ब्रिटेन के बीच पारसल भी वायुयानों से जाने लगे। (The Tata Airlines) भारत की सबसे पहिली कम्पनी थी जिसने कराची और मद्रास के बीच सन् १९३२ ई० में साप्ताहिक सेवा प्रारम्भ की। इसके पश्चात् एक के बाद दूसरी कम्पनियों का जन्म हुआ। जानपद विमान-चालन (Civil Aviation) का श्रीगणेश सन् १९३८ में हुआ और ब्रिटिश साम्राज्य के सभी देशों को भारत से डाक विमानों द्वारा जाने लगी। बड़े विमानों को प्रस्तावित करके यात्री और वस्तुएँ भी बाहर जाने लगीं। द्वितीय महायुद्ध में भारतीय वायु यातायात उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया।

भारतीय वायु यातायात का कार्य क्षेत्र उत्तर में काबुल और श्रीनगर से लेकर दक्षिण में कोलम्बो तक, और पश्चिम में लन्दन और नैरोबी से लेकर पूर्व में बैंगकाक, हांगकांग और जकार्ता तक फैला हुआ है। भारत के सभी प्रमुख नगर वायु मार्गों पर स्थित हैं। देश के सभी वायुमार्गों की लम्बाई लगभग २६६०० मील है। १ जुलाई सन् १९५३ को भारतवर्ष में ९ वायु यातायात की कम्पनियाँ थीं जिनका प्रशासन १ अगस्त सन् १९५३ को भारत सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप सारी भीतरी और बाहरी सेवाएँ (Internal and External Services) दो कारपोरेशन के अन्तर्गत आ गई हैं। (The Indian Arlines Corporation) प्रबन्ध करता है और (The Air Indian International Corporation) बाहरी सेवाओं का।

भारत में वायु यातायात की प्रगति

वर्ष	उड़े हुए मील	यात्रियों की संख्या	भार पौंड में	डाक पौंड
११४५	३३२००००	२४०००	८५२०००	५०००००
१९४७	९३६२०००	२५५०००	३८६९०००	१४००१००
१९४८	१२६४८०००	३४१०००	११९६९०००	१६०००००

वर्ष	उड़े हुए मील	यात्रियों की संख्या	भार पौंड में	डाक पौंड
१६४६	१५०६८०००	३५७०००	२२४६६०००	५०००५००
१६५०	१८८६६०००	४५३० ०	८०००७०००	८३०००००

खण्ड ६
सन्देश वाहन(Voice Communication)

पिछले पृष्ठों में हम यातायात के साधनों से भली भाँति परिचित हो चुके हैं। आजकल सन्देश वाहन (Communication) के साधन भी विकसित हो गये हैं। वर्तमान व्यापारिक युग में उनके बिना सफल व्यापार की कल्पना नहीं की जा सकती। उद्योग और व्यापार के लिए सन्देश वाहन के साधन उतने ही आवश्यक हैं जितने कि यातायात के साधन। जर्मनी के एक भूगोलवेत्ता के मतानुसार दूर भाषों (Telephones) की संख्या इस बात का द्योतक कि कोई नगर एक व्यापारिक केन्द्र की दृष्टि से कितने महत्व का है।

वाणी प्रेषण के साधनों में टेलीफोन, टेलीग्राफ़, केबेल और रेडियो प्रमुख हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे बड़ी द्रुत गति से दूर स्थानों को मनुष्य का सन्देश पहुँचा देते हैं। ये सभी साधन विद्युत पर आश्रित हैं, अतः क्षणभर में वाणी सैकड़ों मील पहुँच जाती है। एक शताब्दी से भी कम समय हुआ जब विद्युत् 'दूर-लिख' (Electric Telegraph) प्रचलित हुआ। आजकल इसका प्रयोग सभी सभ्य देशों में होता है। सन् १८६६ ई० में उत्तरी अटलांटिक महासागर में प्रथम (Cable) बिछाया गया। संसार के अधिकांश केबेल उत्तरी अटलांटिक में ही मिलते हैं। उत्तरी प्रशान्त महासागर में वे बहुत कम बिछाये गये हैं। इसका कारण यह है कि उत्तरी अटलांटिक के दोनों ओर दो ऐसे क्षेत्र स्थित हैं जो उद्योग और व्यापार में काफी उन्नति कर चुके हैं। संसार के ५० प्रतिशत केबेल पर ग्रेट ब्रिटेन का अधिकार है। संसार के समस्त 'दूरलिख' तारों की लम्बाई २० लाख मील आँकी गई है। संयुक्त राज्य, जर्मनी, फ्रांस, रूस, ग्रेट ब्रिटेन, भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया, कनाडा और अर्जेन्टाइना में यह साधन पूर्ण विकसित हो चुका है।

संयुक्त राज्य और कनाडा में टेलीफोन का अत्यधिक प्रयोग होता है। इसका प्रयोग अब केवल निकटवर्ती स्थानों के बीच ही नहीं होता वरन् दूर-दूर भी इससे सन्देश भेजे जाते हैं। संसार के ५७ प्रतिशत टेलीफोन संयुक्त राज्य में पाये जाते हैं और एक-तिहाई से ऊपर यूरोप में।

रेडियो या बेतार का तार (Wireless) सबसे नया ढंग है। इसने संसार में

महान् उथल-पुथल उपस्थित कर दी है और मनुष्यों और राज्यों के सम्बन्ध में आमूल परिवर्तन हो गया है। सन् १६०१ ई० में रेडियो से यूरोप और अमेरिका के बीच सम्बन्ध स्थापित हुआ। रेडियो की प्रतियोगिता में टेलीग्राफ कभी भी नहीं ठहर सकता क्योंकि रेडियो में न तो तार के खम्मे लगाये जाते हैं और न तार की आवश्यकता पड़ती है। रेडियो शिक्षा प्रसार, विज्ञापन, मनोरंजन और समाचार भेजने का अद्वितीय ढंग है। वह उत्तरी अमेरिका और यूरोप में मनुष्य के जीवन का एक प्रमुख अंग बन गया है। संयुक्त राज्य में संसार के ५० प्रतिशत रेडियो पाए जाते हैं।

भारत में सन्देश वाहन—यह बड़े गर्व की बात है कि संसार में सबसे पहिले प्रयोग के हेतु २१ मील लम्बी तार के खम्भों की एक पंक्ति का निर्माण हमारे देश में सन् १८३६ ई० में हुआ। टेलीफोन के आविष्कार के ५ वर्ष पश्चात् सन् १८८१ ई० में कलकत्ते में उसका प्रयोग शुरू हो गया था। नियमित प्रयोग के लिये भारत में सबसे पहिले सन् १८५२ ई० में तार से सन्देश भेजने की व्यवस्था की गई जिसका प्रयोग जनसाधारण के लिये सन् १८५५ ई० में प्रारम्भ हुआ। सन् १६५३ में ई० में भारत में टेलीग्राफ की शताब्दी मनाई गई।

टेलीग्राफ की उन्नति में भारत ने सबसे पहिले कदम बढ़ाया। परन्तु उसकी उन्नति बहुत धीरे-धीरे हुई। हमारे देश में सन् १६३६ ई० में १०० व्यक्तियों पर केवल २ टेलीफोन थे जब कि संयुक्त राज्य में १००० व्यक्तियों पर १५५ टेलीफोन थे। १६४७ ई० के बाद सन्देश वाहन में द्रुतगति से उन्नति हुई और आजकल हमारे देश में १००० व्यक्तियों पर .७ टेलीफोन हो गये हैं। यह घनत्व उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, सन् १६६१ तक टेलीफोन की संख्या ५ लाख हो जाने की आशा है और तब १००० व्यक्तियों पर १.२५ टेलीफोन हो जाएँगे किन्तु फिर भी हमारा देश संयुक्त राज्य से बहुत पीछे रहेगा।

अध्याय १२

उपसंहार

"The ensemble of all these facts in which human activities have a part, forms a truly special group of surface phenomena—a complex group of facts infinitely variable and varied, always contained within the limits of physical geography, but having always the easily discernible characteristic of being related more or less directly to man. To the study of this specific group of geographical phenomena we give the name "Human Geography".

...*Jean Brunhes*

पिछले अध्यायों से यह भली भाँति विदित हो गया होगा कि मानव-भूगोल के अध्ययन का विषय मनुष्य तथा वातावरण का परिवर्तनशील पारस्परिक सम्बन्ध ही है। मनुष्य तथा वातावरण का सम्बन्ध कैंची के दोनों पल्लों के समान समझना चाहिये जिनकी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप समस्त सांस्कृतिक वातावरण का प्रादुर्भाव होता है। यदि हम इनमें से किसी एक को कुछ क्षणों के लिए अकर्मण्य मान लें, तो जिस प्रकार कैंची के एक पल्ले से कोई कटाई सम्भव नहीं है, उसी प्रकर सांस्कृतिक गति स्वतः रुक जायेगी। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य तथा वातावरण कैंची के पल्लों के समान है। वास्तव में मानव भूगोल के तथ्यों को दृष्टि में रखकर हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि मानवीय क्रिया सर्वोपरि है, क्योंकि मनुष्य के बिना भूगोल एक निष्प्राण स्थूल-शरीर मात्र ही है। हाँ, हम स्थूल शरीर की अवहेलना भी तो नहीं कर सकते, अतः वातावरण का भी अपना निज का महत्व है। निःसन्देह वातावरण एक रंगमंच के समान है जिस पर मनुष्य अपनी कलात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन करता है। अब आप ही इसका निर्णय कीजिये कि हमें किसे प्रधानता देनी चाहिए—रंगमंच को अथवा कलाकार को।

जिनकी आस्था प्रगतिवाद में है वे यह नहीं मानते कि ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि अपनी किसी विशेष साधना की पूर्ति के लिये की और उसे शासनकर्ता के रूप में जीव मण्डल में अवतरित किया। उनका विश्वास है कि मनुष्य ईश्वर प्रदत्त मानसिक श्रेष्ठता के फलस्वरूप प्रगति के मार्ग पर द्रुत गति से चला और अन्य प्राणियों से आगे बढ़ गया। अतः मनुष्य का भौतिक वातावरण से सम्बन्ध वैसा ही है जैसा अन्यान्य प्राणियों का। परन्तु मनुष्य अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल से वातावरण की दासता से बहुत कुछ मुक्त है। वह एक ओर तो स्वयं अपने को वातावरण के अनुकूल बना लेता है, तो दूसरी ओर परिस्थितियों को अपनी सुविधानुकूल परिणत कर लेता है। इस प्रकार मनुष्य भौगोलिक शृङ्खला की एक ऐसी कड़ी है जो अत्यन्त लचीली है और जिसका निजी मान सर्वोच्च है, पर जिसे प्रथक अस्तित्व की कल्पना सर्वथा निर्मूल समझना चाहिये।

इसी कारण से हमारे अध्ययन का आरम्भ भौतिक वातावरण की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होता है जिस पर सर्व प्रथम हम अन्यान्य प्राणियों—पौधों तथा पशुओं—की क्रिया प्रतिक्रिया का अवलोकन करते हैं। फिर मनुष्य की बारी आती है जो स्वयं भी वातावरण का एक अंग है। इस क्रम की सार्थकता भौतिक वातावरण की अपेक्षाकृत स्थायित्व से स्पष्ट है। पर्वत, सागर तथा पठार आदि में परिवर्तन शताब्दियों में ही दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु प्राणिमात्र में कतिपय परिवर्तन क्षणिक होते हैं। यद्यपि यह सिद्ध हो चुका है कि जलवायु सम्बन्धी परिवर्तन चक्र-ग्रस्त हैं, फिर भी जलवायु को अपेक्षाकृत स्थायी समझा जा सकता है, फिर भी जलवायु भूपटल से प्रभावित होती है और उस पर अपनी अमिट छाप भी अंकित करती है। जल मण्डल—नदियाँ, झीलें तथा पृथ्वी के भीतर की जलधारायें—तथा मिट्टियों की उत्पत्ति भूपटल तथा जलवायु की क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही होती है। फिर वनस्पति की बारी आती है जिसे किसी क्षेत्र की जलवायु तथा मिट्टी का प्रतिनिधि कहने में अतिशयोक्ति नहीं दीखती। यही कारण है कि संसार को वनस्पति सम्बन्धी क्षेत्रों में सरलतापूर्वक विभाजित किया जा सकता है। फिर पशुओं तथा पक्षियों की बारी आती है जिनमें वृक्षों के विपरीत गतिशीलता होती है, जिसके कारण वे अपने को वातावरण के अनुकूल कहीं अच्छे ढंग से बना लेते हैं। जब एक स्थान पर घास समाप्त हो जाती है पशु दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। पक्षी भी ऋतु-परिवर्तन के साथ अपने निवास-स्थान को बदल दिया करते हैं। फिर मनुष्य की बारी आती है जिसे समस्त भौगोलिक वातावरण प्रभावित करता है। साधारणतया भूपटल की बनावट तथा स्थिति, मिट्टी पौधे तथा

पशु आदि सब मिल कर तथा पृथक-पृथक मानवीय क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। परन्तु मनुष्य अपनी प्रखर बुद्धि के प्रयोग से अन्य प्राणियों की भाँति वातावरण का कठिनाइयों अथवा असुविधाओं के समक्ष आत्म-समर्पण नहीं कर देता वरन् उन पर विजयी होने का भगीरथ प्रयत्न करता है।

मनुष्य अपनी आदि कालीन अवस्था में जीवों के शिकार तथा जंगली फलों पर निर्वाह करता था। गुफाओं में तथा पेड़ों पर रहता था। खालों तथा वृक्षों की छालों एवं पत्तियों आदि से नग्न शरीर ढकता था। सारांश में उसका जीवन वातावरण से बहुत ही ओत-प्रोत था जिसके दर्शन कुछ अंशों में हमें आदि निवासियों के जीवन में होते हैं। परन्तु क्रियाशील प्रगतिवादी मनुष्य को अपनी स्थिति पर सन्तोष न था। उनकी बुद्धि ने संचालन किया, उत्साह ने साथ दिया और उसने प्रगति के मार्ग का अवलम्बन किया। उसकी आवश्यकताओं का क्षेत्र स्वतः प्रशस्त हो गया। उसने पशुओं में कुछ मित्र ढूँढ़ निकाले जिनका उसने पालन-पोषण प्रारम्भ किया और उन्हें अपनी अन्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाया। उसने कुछ महत्व-पूर्ण पौधों की खोज की और जंगली फलों आदि पर ही निर्वाह न करके खेती के द्वारा अपनी खाद्य-सामग्री की समस्या को हल किया। जल के लिए नदी, पोखरों तथा झीलों पर ही आश्रित नहीं रहा, उसने कुएँ, नहरों तालाबों आदि का निर्माण किया। अपनी वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसने पशुओं की ऊन, पौधों के रेशे तथा रासायनिक रेशों आदि का प्रयोग किया। गुफाओं तथा कन्दराओं से निकल कर उसने झोपड़ियों का निर्माण किया और कालान्तर में उन्हें न्यूयार्क की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के रूप में परिणत कर दिया। इन्हीं प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये शनैः-शनैः अन्यान्य कला-कौशल, उद्योग-धन्धों, आवागमन के साधनों तथा व्यापार आदि का आविर्भाव हुआ। नगर बने, राज्य बने और समस्त संसार सांस्कृतिक प्रतीकों से देदीप्यमान हो उठा। इस प्रकार आदिकाल से मनुष्य के वातावरण का क्षेत्र प्रशस्त होता रहा और आज जब मनुष्य अणु-युग में विद्युत गति से क्षेत्र तथा समय पर विजयी हो रहा है, उसका वातावरण इस तेजी के साथ बदल रहा है कि सभ्यता तथा संस्कृति का सामंजस्य दूभर हो रहा है।

जब हम इस परिवर्तनशील सांस्कृतिक वातावरण की व्याख्या करते हैं तो हमारे अध्ययन में वे सामाजिक संस्थाएँ भी आ जाती हैं जिनके द्वारा तत्कालीन वातावरण प्रभावित होता है। अतः एक मानव भूगोल के विद्यार्थी के लिये यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह न केवल भौगोलिक (प्राकृतिक) दशाओं का

ही अध्ययन करे, वरन् आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे को भी भली-भाँति समझे, क्योंकि इस पक्ष को बिना समझे वह राष्ट्रीय योजनाओं में अपना यथोचित अनुदान नहीं दे सकता और न उसका मत सर्वमान्य ही हो सकता है। उदाहरण के लिये किसी देश की जनसंख्या के वातावरण को ले लीजिये। इसमें संदेह नहीं कि भौगोलिक (प्राकृतिक) वातावरण इस वितरण को प्रभावित करता है और बहुत कुछ हद तक उसके विन्यास की व्याख्या करता है परन्तु ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा राजनैतिक तथ्य भी अपना निजी महत्व रखते हैं, अतः उनकी उपेक्षा करना सर्वथा वर्जित ही होगा। दक्षिणी-पूर्वी एशिया के उमड़ते हुए जनसमूह तथा उसकी जनसंख्या के घनत्व की व्याख्या केवल मानसूनी वर्षा नहीं कर सकती। यह सत्य है कि मानसून जलवायु के कारणों से ही यहः चावल का उत्पादन अत्यधिक है और जो जनसंख्या की उदरपूर्ति का मुख्य आधार है। पर इस समस्या का ठीक हल ढूँढने के लिए हमें उस क्षेत्र की आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दशाओं का भी उल्लेख करना पड़ेगा। वास्तव में इस क्षेत्र की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जनसंख्या की जो विश्व-शान्ति के लिये अत्यन्त घातक है, व्याख्या वहाँ के निवासियों की दयनीय दशा, सामाजिक ढाँचा तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के विश्लेषण के आधार पर ही सम्भव है। आस्ट्रेलिया के न्यूनतम जनसंख्या में अंग्रेजों की 'श्वेत-नीति' का हाथ है, अतः यह तक कि वहाँ जनसंख्या तथा वातावरण में पारस्परिक संतुलन स्थापित हो गया है, किसी भी अर्थ में मान्य नहीं हो सकता।

संसार की जनसंख्या दो-तीन शताब्दियों में बड़ी तेजी के साथ बढ़ी है और कुछ देशों में आज भी उसकी गरजती हुई धारा तरारे भरती दृष्टिगोचर हो रही है। कितने ही ऐसे देश हैं जहाँ जनसंख्या का भार इतना बढ़ गया है कि उनकी तत्कालीन सभ्यता की कमर टूट गई है। समय बहुत द्रुत गति से बढ़ रहा है, जनसंख्या उससे कदम मिला रही है परन्तु सभ्यता निस्तब्ध सी खड़ी है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी देश हैं जहाँ लोग सम्पन्नता के शिखर पर विराजमान हैं। एक ओर अर्धनग्न तथा अर्धभूखे लोगों में त्राहि-त्राहि मच रही है तो दूसरी ओर असीम भोग-विलास जन्मसिद्ध अधिकार बना हुआ है। इस घोर असमानता की पृष्ठभूमि, जिसका सृजन साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद के कर-कमलों द्वारा हुआ है, मानवता को चुनौती दे रही है और अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद को आह्वान कर रही है नव-निर्माण के लिये, क्योंकि उसी के अन्तर्गत राष्ट्रीय खाइयों की समाप्ति सम्भव है और रंग-भेद मिटा कर राजनैतिक जादूगरी की काली करतूतों की अन्त्येष्टि की जा सकती है। कृत्रिम

राजनैतिक चहारदीवारों में बन्दी मनुष्य आवास-प्रवास के द्वारा संसार में प्रशस्त हो सकता है और प्राकृतिक साधनों तथा सुविधाओं का यथोचित प्रयोग करके समस्त मानवता के स्तर को निरन्तर ऊँचा उठा सकता है जिस पर निःसन्देह आज का पूँजीवाद बलि-बलि जायेगा। संसार में वैभव तथा सम्पन्नता के साथ सच्चे सुख तथा शांति का लोकप्रिय साम्राज्य होगा। अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र व्यापार बढ़ेगा जिसके फल-स्वरूप विश्वव्यापी भौगोलिक सामंजस्य की स्थापना होगी और हमारे लिये यह सम्भव हो जायेगा कि हम संसार को प्राकृतिक विभागों के स्थान पर सांस्कृतिक विभागों में सरलतापूर्वक बाँट सकेंगे।

प्रश्न

QUESTIONS

CHAPTER I

(1) "Human Geography is the study of man's adjustment to his environment." Elaborate the given statement with examples.

(2) Write an essay on the scope and aims of human geography.

(3) "If geography is the study of the earth as the home of man, human geography is the study of man as a product of the earth." Discuss.

(4) What basic principles are involved in the study of human geography ? Evaluate man's role towards the development of the environment.

(5) "Mankind is a link in the chain of the intimate interdependence between inanimate objects and living beings" Expand this statement with different examples.

(6) Give a very thorough and critical examination of the concept and principles of human geography.

(7) "That which is exceptional has less value, in the study of human geography, than that which conforms to a type." Comment and illustrate with examples.

(8) Examine the position of human geography among the modern social sciences.

(9) "There are no necessities but everywhere possibilities and man as a master of these possibilities is the judge of their use." Critically examine the above statement.

(1) What contributions did Karl Ritter and Friedrich Ratzel make to the development of human geography ?

(2) Examine the contributions of the French School to the development of human geography.

(3) Write an essay on Ellsworth Huntington as a protagonist of possibilism.

(4) Examine the march of human geography in the twentieth century.

(5) Give a brief history of development of human geography.

CHAPTER III

(1) Describe the "Facts of Plant and Animal conquest" as enunciated by Brunhes.

(2) Enumerate the "Facts of Economic plunder" Consider fully the affects of one of these economic on contemporary civilization.

(3) Examine the role of animals in helping man to conquer the environment or to further his own development.

(4) How does Brunhes classify the essential facts of human geography ?

(5) Discuss the classification of the facts of human geography as given by Huntington.

(6) Give a reasonable classification of the facts of human geography.

(7) Consider the positive approach to the classification of the facts of human geography.

CHAPTER IV

(1) "Of all the factors of the environment, climate exercises the greatest influence on human activities." Discuss.

(2) To what extent should man be considered as a geographic factor in the study of human geography?

(3) Examine the role of man as a geographic factor.

(4) "Man is not simply the creature of his environment but in pai creator." Discuss the validity of this statement as an interpretatioı the facts of human geography.

(5) "Fewer economic opportunities present themselves to the peoples of the mountains than to those of the plains". Discuss.

(6) Contrast the general pattern of life of people living in the plains and in the mountains. Illustrate your answer with any example excepting that from Uttar Pradesh.

(7) Discuss the 'climatic optimum' theory of Huntinton and show how far it is applicable to Indian Union.

(8) Correlate the life conditions in zones of latitude and zones of altitude.

(9) How do soils influence civilization?

(10) Describe the anthropogeography of a river.

(11) "In physical geography exchanges take place between climates, while in human geography they are between products." How does the ocean matter in this state of affairs?

(12) Examine the intimate relationship between man and animals.

(13) "Dynamic man does not live in a static environment, although the rate of change in his physical environment may be very slow." Discuss.

CHAPTER V

(1) Discuss fully the factors that affect the population density of a region.

(2) "Migration cannot solve the problem of overpopulation." Do you agree? Suggest other ways and means of solving this acute problem.

(3) By selected and reasoned examples, show how population distribution over the globe is related to water.

(4) Attempt a reasoned essay on the demographic pattern of U. P.

(5) "Two-thirds of all the inhabitants of the earth are concentrated in one seventh of its area." Discuss the problems arising out of such anomalous distribution of world population and suggest the areas of future pioneering.

(6) Discuss the distribution of population in the modern world, with special reference to Indian Union.

(7) How does population density affect the possibility of adverse economic activity and human settlement patterns? Illustrate with examples from India.

(8) Write an essay on the growth of population in India.

(9) Give an account of the European agglomeration and reasons for its continuance and importance.

(10) Analyse the distribution of population in India and show how it is related to the geographical environment.

(11) "Contemporary civilization has set in motion side by side with causes which favour increase of population, others which would rather tend to decrease it. As the former had greater influence during the 19th century, it may well be that the latter will take the lead in the generations to come." Comment upon this statement.

CHAPTER VI

(1) Give a reasoned account of the distribution of the different types of rural settlements in India.

(2) What environmental factors determine the use of various types of building material? Give a reasoned geographical distribution of any one of the principal building materials in the world.

(3) Describe the various settlement types in U. P. with suitable sketches.

(4) What are 'Human Establishments'? Compare and contrast the types of establishment characteristic of open plains and mountains.

(5) Analyse the nature and functions of modern cities and show how far they represent the present civilization.

(6) "Settlement patterns in the Soviet Union conform to types of land-use". Elaborate this statement giving concrete examples.

(7) "The topographical map is the most exact and faithful expression in all its details of the distribution of population". Elaborate this statement.

(8) "The concentration of habitations keeps pace with the concentration of paths of communication." Comment upon the above statement.

CHAPTER VII

(1) In relation to the environmental conditions, compare and contrast the agricultural methods and practices in south East Asia and the European Mediterranean region.

(2) What geographical factors are responsible for the evolution of the present Industrial civilization ? Show how they are evolved.

(3) "The food-supply is one of closest ties between man and his environment." Comment upon this statement.

(4) "Wherever man and natural products are concerned, the 'idea' intervenes." Critically examine and elaborate the above statement.

(5) "As physical conditions may limit the possibilities of economies, so the economy may in turn be a limiting or stimulating factor in relation to size, density, and stability of human settlement and scale of social and political unit. Critically examine the above statement.

(6) What are primary economies of mankind ? Consider the importance of hunting and fishing in modern times.

(7) "Plantation agriculture is arboriculture rather than agriculture". Elaborate the above statement giving examples from south east Asia.

(8) What are the main occupations of the dwellers in the Ganga valley ?

CHAPTER VIII

(1) Give a detailed account of the distribution of iron in the world, bringing out clearly the part it has played in the development of region where it occurs.

(2) Describe and discuss influence of mineral exploitation on man.

(3) Describe and discuss human geography of petroleum in this atomic age.

(4) Give an account of resources and production of petroleum in the Middle East. Examine their strategic significance in the international politics and the international geonomics.

(5) Examine the part played by metals in building modern civilization,

(6) Compare and contrast the human significance of the exploitation of gold and coal.

(7) Discuss mineral exploitation, particularly that of precious metals and mineral fuels, as a factor in human migration and colonization of countries.

CHAPTER IX

(1) Give an account of world distribution of 'white coal' resources and analyse the physical and economic factors that have favoured their development in certain areas.

(2) Describe how man has used 'the sources of power' for the development of his cultural life in different parts of the earth.

(3) "The Mechanical Revolution has brought great benefit to some regions; less to others; and little or almost none to remarkably large areas of the earth." Critically consider the above statement and give reasoned examples.

(4) "This universe in which man lives is one continuous carnival of power, a veritable saturnalia of power—physical power energy." Elaborate the above statement.

(5) Give a comparative account of petroleum and coal as sources of power.

(6) Discuss the potentialities of atomic power.

(7) "Coal and oil and gas in time will go, but water power will remain. As long as the rains and snows from heaven fall upon this earth, as long as water runs down to sea to be lifted by the sun through evaporation and wafted over the lands to start its journey anew, man will have at his disposed a perpetual source of power." Commenting upon the above statement bring out fully the potentialities of water power in the world.

(8) "The use of water power has had its ups and downs, depending on industrial conditions and inventions." Elaborate above statement with reasoned examples.

(9) Discuss the potentialities of water power in U. P.

CHAPTER X

(1) Compare the Yangtze Kiang with the Nile as means of communication.

(2) Compare and contrast the Suez with the Panama canal as highways of commerce giving a short account of their construction and development.

(3) Describe and discuss the nature and function of the road in the development of man.

(4) Give an account of the development and functions of air transport in the modern world.

(5) With reference to specific examples, examine the role of railways in economic development and national solidarity.

(6) "The Road is one of the great fundamental institutions of mankind." Examine this statement with reference to the modern world.

(7) In relation to various environmental conditions, describe fully man's role as a beast of burden.

(8) "The nation that does not touch of the ocean is like a house that is not upon the street." Comment upon the above statement.

(9) Discuss fully the features of national culture resulting from man's transportation activities.

CHAPTER XI

(1) Describe and discuss, with causes, the main features of life in the Mediterranean region.

(2) Account for chief characteristics of life in the Monsoon lands.

(3) Discuss how the character and activities of the people inhabiting hot deserts are related to environment.

(4) In relation to geographical environment trace the development of West European civilization pointing out the fundamental differences between the Occidental and Oriental cultures.

(5) Write full anthropogeographical notes on any two of the following;

(*a*) Santhals (*b*) Gonds (*c*) Kharies (*d*) Tharus.